✸ श्रीगौरगदाधरौ विजयेतेतमाम् ✸

श्रीश्रीकृष्णभक्ति-रत्नप्रकाशः

श्रीमद् राघव पण्डित गोस्वामी विरचितः

श्रीहरिदास शास्त्री

※ श्रीगौरगदाधरौ विजयेतेतमाम् ※

श्रीश्रीकृष्णभक्ति-रत्नप्रकाशः

श्रीमद् राघव पण्डित गोस्वामी विरचितः

श्रीहरिदास शास्त्री

प्रकाशकः-

श्री हरिदास शास्त्री गो-सेवा संस्थान

"श्री हरिदास निवास"

पुराना कालीदह, वृन्दावन,

जिला-मथुरा-२८११२१ (उ०प्र०)

दूरभाष - ०५६५-३२०२३२५

मोबाईल - ०६३५८७०३२२४, ०६६६०७५११११

वेबसाइट - www.sriharidasniwas.org

ई-मेल - info@sriharidasniwas.org

प्रथम संस्करण प्रकाशन तिथि-विजयादशमी १/१०/१६७६

प्रथम संस्करण पुनः प्रकाशन तिथि श्री गुरू पूर्णिमा २२/७/२०११

मुद्रकः

श्री गदाधर गौरहरि प्रेस

प्राचीन कालीदह, वृन्दावन

जिला-मथुरा (उ०प्र०)

※ श्रीगौरगदाधरौ विजयेतेतमाम् ※

श्रीश्रीकृष्णभक्ति-रत्नप्रकाशः

सानुवादः

श्रीमद् राघवपण्डित गोस्वामि विरचितः

सच

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन

न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण, सांख्य, मीमांसा

वेदान्त, तर्क,तर्क,तर्क,वैष्णवदर्शनतीर्थ, विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितः ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :—

श्री गदाधरगौरहरि प्रेस

श्रीहरिदास निवास,

कालीदह वृन्दावन जिला—मथुरा । उः प्रः

चतुर्थ प्रकाशमें पृ: ६७-९९ श्रीनन्दनन्दन का नित्य वृन्दावन विलासित्व, जन्मलीला, अवतार कारण, केशावतारत्व खण्डन, बाल्यादि हेतु प्रदर्शन, असुरवधादि, धामप्रसङ्ग, प्रवास तत्त्व, दृश्या दृश्यत्व विचार प्रसङ्ग वर्णित है।

पञ्चम प्रकाशमें पृ: १००-१३८ स्वांश अवतारादि का प्रसङ्ग अवतारी का लक्षणनिरूपण, वासुदेवादि का स्वरूप निर्धारण, श्रीराधा तत्त्व, दुर्गातत्त्व, शक्तित्रय की विवृति, निरीह श्रीकृष्णका अवतारत्व, अवतार का स्वरूप प्रभृति वर्णित है।

षष्ठ प्रकाशमें पृ: १३८-१६२ भगवत प्राप्ति के लिए साधन-साधनी, ज्ञानयुक्ता एवं प्रेमलक्षणाभेद से भक्तित्रय, नवविधा भक्तिका विभाग एवं विवरण, सत्सङ्ग प्रभाव, साधुनिर्णय, भागवतधर्म में अच्युति इत्यादि की वर्णना के अनन्तर श्रीकृष्ण भजन का ही सारात् सारत्व का निरूपण हुआ है।

ग्रन्थकार ने इस छै अध्यायों में क्रमश: (१) हीरा, श्रीकृष्ण भजनोद्देश। (२) मुक्ता, नाना उपासना वर्जन (३) सुनीलरत्न, श्रीकृष्ण का पूर्णतमत्व निरूपण। (४) माणिक्य, श्रीवृन्दावन में नित्य प्रकाश। (५) मरकतरत्न, श्रीनन्दकिशोर स्वरूप। (६) चिन्तामणि, भक्तिविरचन, इत्यादि की वर्णना के प्रसङ्ग में उन्नतर सोपान की सूचना दी है। भक्तिपथके पथिक के लिए जितने भी विरुद्ध मतवादियों का सामना करना अवश्यम्भावी हो जाताहै, उनसब का सुन्दररूपसे निराकरण करके विशुद्ध भजनपथ का निर्द्देश प्रदान करना ही प्रस्तुत ग्रन्थका तात्पर्य हैं।

इस ग्रन्थ में अनेक प्राचीन ग्रन्थों से उद्धरण दियागया है, उस में से कुछतो दुष्प्राप्य है, और गोलोकसंहिता, गोरक्षसंहिता, आदि यामल, तन्त्रग्रन्थों, का नाम तो अश्रुतचर ही है, श्रीगोविन्द वृन्दावन नामक ग्रन्थका उल्लेख इस ग्रन्थ में विशेषरूपसे हुआ है।

हरिदास शास्त्री

राधाकृष्ण–चैतन्य चरित्र सदागाय ।
ना धरे धैरज नेत्र जले भासि जाय ।।
धूलाय धूसर स्पृहा नाहि भक्षणेते ।
प्रवल वैराग्य चेष्टा के पारे बुझिते ?

आजभी श्रीगिरिराज के तटदेश में "राघवपण्डित की गुफा" विराजितहै, इससे उनकी भजननिष्ठा वैराग्य प्रभृतिका यथेष्ट प्रमाण मिलताहै. भक्तिरत्नाकरके अनुसार अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन आपने किया था, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थको छोड़कर अन्यान्य ग्रन्थों का अनुसन्धान अभीतक नहीं मिलाहै, प्रस्तुत ग्रन्थमें षट् अध्यायहैं इस छै अध्यायों में प्रत्येक अध्याय के अन्तिम श्लोक में गोस्वामी पादने प्रस्तुत प्रबन्ध को रत्नमाणिक्य आदिके साथ रूपक द्वारा भक्तिरत्न प्रकाश नाम की सार्थकता का प्रदर्शन किया है ।।

प्रथम प्रकाशमें पृः १-१२ श्रीकेशव आचार्य प्रणीत क्रमदीपिकोक्त प्रथम आठ श्लोक से मङ्गलाचरण तथा वर्णनीय विषयों का सन्निवेश विवरण, सर्वोपासना निरसन पूर्वक श्रीकृष्ण-भजन का समादर इत्यादि वर्णित हुआ है ।

द्वितीय प्रकाशमें पृः १२–३४ विभिन्न देवता, तीर्थ, सत्कर्मादि का नश्वरत्व प्रतिपादन पूर्वक ब्रह्मोपासना का निष्फलत्व प्रतिपादित हुआ है, प्रसङ्गतः अध्यात्मवादिगण के द्वारा आरोपित श्रीकृष्ण स्वरूप के प्रति प्राकृतत्व, भौतिकत्व, सगुणत्वादि का समाधान, एवं साक्षात् ब्रह्मविद्या द्वारा जावालि मुनि के प्रति प्रदत्त श्रीकृष्णरति विषयक उपदेश प्रभृति की वर्णनाके अनन्तर नानोपासना का वर्जन किया गयाहै ।

तृतीय प्रकाशमें पृः ३४–६६ श्रीवृन्दावन तत्त्व, नित्य एवं दिव्य वृन्दावन धामका अप्राकृतत्व, कालादिका अगोचरत्व, श्रीकृष्ण स्वरूपका सर्वेश्वरत्व, वेद गोचरत्व, परात्परत्व, नित्य किशोरत्व, इत्यादि विषय वर्णित हैं ।

श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ।

आद्योमहाप्रभु श्रीगौरसुन्दर की अनुकम्पासे श्रीगोवर्द्धन 'पुछरी' निवासी श्रीपाद राघवपण्डित गोस्वामी रचित "श्रीकृष्णभक्तिरत्न प्रकाश" नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। श्रीगौरगणोद्देश दीपिका (१६२) के अनुसार ग्रन्थकर्त्ता का विवरण निम्नोक्त प्रकार है—

श्रीराधा प्राणरूपा या श्रीचम्पकलता व्रजे
साद्य राघव गोस्वामी गोवर्द्धनकृतस्थितिः ।
भक्तिरत्न प्रकाशाख्यो ग्रन्थो येन प्रकाशितः ॥

भक्ति रत्नाकर एवं वङ्गला भक्तमालके तृतीयाध्यायमें प्रस्तुत ग्रन्थकार का नामोल्लेख बहु प्रकार से हुआहै; श्रीनिवासाचार्य प्रभु एवं श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय व्रजपरिक्रमा,-श्रीराघव पण्डितजी के साथ ही किए थे, इसका विस्तृत विवरण भक्ति रत्नाकर ग्रन्थमें है, महिमावर्णन प्रसङ्गमें भक्तिरत्नाकर के (५-२१-२८) में वर्णित है—

दाक्षिणात्य विप्र महाकुलीन प्रचार ।
परमवैष्णव, क्रिया के वर्णिवे ताँर ॥
दीन हीने अनुग्रह सीमा देखाइला ।
भक्तिरत्न प्रकाशादि ग्रन्थ ये वर्णिला ॥
जाँहार सर्वस्व श्रीपर्वत गोवर्द्धन ।
गोवर्द्धने वास, सर्वशास्त्रे विचक्षण ॥
मध्ये मध्ये व्रजेते भ्रमण करे रङ्गे ।
मध्ये मध्ये रहे दासगोस्वामीर सङ्गे ॥
कभु कभु एक योगे आसि वृन्दावने ।
महानन्द पाय प्रभुगणेर दर्शने ॥

※ श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ विजयेताम् ※

※ श्रीश्रीराधागोविन्दौ जयतः ※

श्रीगुरवे नमः

श्रीमद् राघवपण्डितगोस्वामिविरचितः ।

श्रीश्रीकृष्णभक्ति रत्नप्रकाशः ।।

—※—

ॐ कृष्णाय नमः ।

प्रथमः प्रकाशः ।।

—※—

कलात्तमायालवकात्तमूर्त्तिः कलक्कणद्वेणुनिनादरम्यः ।

श्रितोहृदिव्याकुलयंस्त्रिलोकीं श्रियेऽस्तुगोपीजनवल्लभो वः ।१

—※—

गौर हरेः पदाम्बुजं गदाधरसमन्वितं ।

प्रणम्य प्राणसर्वस्वं व्याख्यामि रत्नपुस्तकम् ।।

जो ज्ञान स्वरूप होने पर भी कृपा पूर्वक मूर्त्ति परिग्रह करते हैं, (अर्थात् शरीर सम्बन्ध होने परभी जिनका स्वरूपानुसन्धान कीप्रच्युति नहीं होती है, अथवा(कल् बन्धनार्थ में) बन्धनात्मक संसार प्रवर्तन के लिए मायालेशरूप जलतत्व स्वरूप में मूर्त्तिको अङ्गीकार किए हैं, अथवा सकल श्रीगोपाल मन्त्र के वीजस्वरूप में कामबीजात्मक मूर्त्तिधारी जो अव्यक्त मधुर शब्दायमान वंशीध्वनि से सबको सुखप्रदानकारी, हृदयपद्म में चिन्तनीय (अथवा सर्व प्राणियों के अन्तर्य्यामी रूप में अवस्थान) वह गोपीजनवल्लभ, त्रैलोक्य मोहन करते करते सब जगत् वासी को सर्वसुख सम्पत्ति दान करें ।।१।।

गुरु चरण सरोरुह द्वयोत्थान्
महितरजःकनकान् प्रणम्यमूर्द्ध्ना ।
गदितमिह विविच्य नारदाद्यै
र्यजनविधिं कथयामिशाङ्गंपाणेः ।।२।।
क्षितिसुर-नृप-बिट्-तुरीयजानां
मुनि-वनवासि-गृहस्थ-र्वाणनाञ्च ।
जपहुत-यजनादिभि र्मनूनां
फलति हि कश्चन कस्यचित् कथञ्चित् ।।३।।

सर्वेषु वर्णेषु तथाश्रमेषु नारीषु नानाह्वय-जन्मभेषु ।
दाताफलानामभिवाञ्छितानां द्रागेव गोपालकमन्त्र एषः ।।४।।
नूनमच्युतकटाक्ष पातने कारणं भवति भक्तिरञ्जसा ।
तच्चतुष्टय फलाप्तये ततो भक्तिमानधिकृतोगुरौहरौ ।।५।।

श्रीश्रीगुरुदेव के चरण कमलोत्थ महनीय रजः कण समूहको मस्तक में धारण–वन्दनादि करके नारद–गौतमादि मुनिवरगण द्वारा कथित श्रीकृष्ण की पूजा होमादि के यावतीय विधान को कहता हूँ ।।२।।

श्रीगोपाल मन्त्र व्यतीत अन्यान्य मन्त्र राश्यादि क्रमसे शोधित होने परभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य; शूद्र प्रभृति वर्ण समूह के एवं गृहस्थ वानप्रस्थ, यति, ब्रह्मचारी प्रभृति आश्रम के एवं स्त्री सकल के मध्य में किसी किसी के भाग्य से सामान्य रूपमें फलद होते हैं ।।३।।

किन्तु यह दशाक्षर गोपालमन्त्र, सर्ववर्ण, सर्वाश्रम, स्त्री प्रभृति एवं नाना नाम नाना नक्षत्रयुक्त व्यक्तिगण कोभी सत्वर मनोवाञ्छित फल दान करता है ।।४।।

कारण श्रीकृष्ण प्राप्ति केलिये भक्तिही एकमात्र निश्चित हैं कारण तव धर्मादि चतुर्वगफल प्राप्ति हेतु हरि व गुरु में अभेद बुद्धि सम्पन्न भक्तिमान व्यक्ति ही दीक्षित होनेका अधिकारी होता है ।।५।।

स्नातो निर्मलधौत सूक्ष्म वसनो धौताङ्घ्रिपाण्याननः
स्वाचान्तः सपवित्रमुद्रितकरः स्वेतोर्द्धपुण्ड्रोज्ज्वलः ॥
प्राचीदिग्वदनो निवध्य सुदृढ़ं पद्मासनं स्वस्तिकम्
वासीनः गुरुन् गणाधिपोमथोवन्देत वद्धाञ्जलिः ॥६॥

अथास्त्रमन्त्रेण विशोध्य पाणी, त्रितालदिग्वन्धहुताशशालान्
विधायभूतात्मकमेतदङ्गं विशोद्धच्चेच्छुद्धमतिः क्रमेण ॥७॥

इड़ावक्त्रे धूम्रं सततगतिवीजंसलवकं ।
स्मरेत् पूर्वं मन्त्री सकलभुवनोच्छोषणकरम् ॥
स्वकं देहं तेन प्रततवपूषापूर्यसकलं ।
विशोष्य व्यामुञ्चेत् पवनमथमार्गणखगणेः ॥८॥

सम्प्रति पूजाका क्रमकहते हैं, स्वगृह्योक्त (आगमोक्त) विधिके अनुसार स्नान के पश्चात् निर्म्मल शुद्ध सूक्ष्म वसन परिधान पूर्वक, करचरण मुखादिको धोकर आचमनकरे, हस्तद्वयमें पवित्र (कुशाङ्गुरीय ललाट में श्वेतबर्ण उज्ज्वल ऊर्द्धपुण्ड्र (हरिमन्दिर) धारणके पश्चात् पूर्वमुखी होकर पद्मासन, अथवा स्वस्तिकासनमें उपवेशन करे, तत् पश्चात् अञ्जलि वद्ध होकर स्वगुरु व गणपतिकी वन्दना करे ॥६॥

अनन्तर अस्त्रमन्त्रसे (अस्त्राय फट्) गन्धपुष्प द्वारा हस्त द्वय को शोधन कर (करन्यास) ऊर्द्धोर्द्ध क्रमसे हात तालि देवे, एवं चुटकी वजाकर (छोटिकाद्वारा) दशदिक्का बन्धनकरे। उक्त अस्त्रमन्त्रसे ही यज्ञशाला (जलद्वारानिजको) वेष्टन करे, इस रीतिसे पञ्चभूतात्मक इस शरीर को शोधण (देवतात्मक) कर विशुद्धमति होवे ॥७॥

भूतशुद्धिका प्रकार :— प्रथमतः मन्त्रानुष्ठाता, वामनासिक में धूम्रवर्ण पाञ्चभौतिक देहशोषक (यम्) यहवायु वीजका स्मरणकरे। (वामनासासे वायुको आकर्षण कर १६ वार जपकरे), पश्चात् निज सकल अङ्ग को उस विस्तीर्ण वीजमय वायु द्वारा पूर्णकर देहस्थ वायु

इत्यादीनि सन्ति तत्रैव (क्रमदीपिकायां(१—८)ज्ञातव्यम्, किमेतत् संग्रहेण । अहो सत्यमेतदुक्तं, किन्तु तान्येव सन्ति, तज्ज्ञातारो न सन्ति। केचित् शुष्कतार्किका न्यायवादिनः। केचित् सन्दिग्धमनसः । केचित् कर्ममार्गिणः केचित् वौद्धपथावेशिनः । केचिन्नानादेव परायणाः । यस्य ये, ते तस्य गुणवादिनः । केचित् सर्वदेवमाहात्म्यसाम्यं विस्तारयन्ति; तदेव प्राचीनान्यपि तानि तानि वहुशः शास्त्राणि वेद्यानि च प्रायस्तत्र समस्त देवसमतांवक्ष्यन्ति ते सूरयः । सर्वात्मा परमेश्वरोऽखिल परः कृष्णो न तैर्ज्ञायते । तत्तेभ्योऽतिसुदुर्लभं समनयं क्षीराब्धिपीयुषवत् एवं तेष्वपि शास्त्रादिष्वप्यस्ति, तत्तस्यसर्वेशस्य श्रीकृष्णस्य तत्त्वविशेयः कैश्चिदपिनज्ञायते कथमेवम् ? तस्यैवेश्वरस्य माययाच्छन्नास्ते नानात्वं पश्यन्ति तदिति नानाशास्त्रानुसारेण, यथा—

को वाहर के वायु के साथ एक मानकर) ६४ वार उस वीजको कुम्भक से जप कर (सूर्यमार्ग से दक्षिण नासासे रेचन कर (त्यागकर) (वायुवीज को ३२ वार जप करते करते) नासावायु को छोड़े ।।८।।

येसव वाक्यनिचय क्रमदीपिकासे ज्ञातव्य है। किन्तु यहसव वाक्य संग्रह करने का उद्धेश्य क्या है ? उत्तरः—अहो सत्यही आपने कहा है, किन्तु ग्रन्थ में अनेक साधन सङ्केत निदेशक वचनावलि है, किन्तु उसका खबर कौन रखता है ? कोई तो न्यायवादी शुष्कतार्किक, कोई सन्दिग्धमानस, कोई तो कर्मकाण्ड परायण, अपर वौद्धमार्गावलम्वी, कोई अनेक देव देवी उपासका इस प्रकार जो जिस पथ के पथिक है वे उस मार्ग की प्रशंसा करते हैं। कोई समानरूपसे समस्त देवताकी महिमा प्रचार में प्रयासी हैं। सुतरां कहता हुँ की वहु

श्रुत्वातच्छ्रु तिशास्त्रतत्त्वनिगमान् दृष्ट्वा पुराणादिकान्
तत् संश्रित्यसतां मतञ्च सततं ख्यातं निगुढ़ं परम् ॥
लीलाविग्रहधारिणोऽपि परमानन्दस्य कृष्णस्य च
ब्रह्मादेरपिदुर्लभं किलयशः संकीर्त्यते यत्नतः ॥९॥

अथ कैश्चिदपि तर्कवादिभिः पुराणोदितं नाद्रियते
तत्राह बृहन्नारदीये प्रथमाध्याये (१-५७-५९)

११। पुराणेष्वर्थवादन्तु ये वदन्ति नराधमाः ।
तैर्वर्जिनानि पुण्यानि तद्वदेव भवन्ति वै ॥

१२। समस्त कर्म निर्म्मूलसाधनानिनराधमः ।
पुराणेष्वर्थवादेन मृतो नरकमश्नुते ॥

शास्त्र, ज्ञातब्यभी अनेक, सुतरां पण्डितगण प्रायकर समस्त देवता का साम्यवाद प्रचार करते हैं। किन्तु सर्वात्मा परमेश्वर सर्वातिशायी श्रीकृष्ण को वेसव नहीं जानते हैं। सुतरां क्षीर समुद्रोद्भुत अमृत की भांति अनेक शास्त्र मन्थन से आविष्कृत सुदुर्लभ इस ग्रन्थरत्न का प्रयन कर रहा हूँ। उक्त शास्त्र निबन्ध में।

निगूढ़ रुपसे सर्वेश्वर श्रीकृष्ण तत्व विशेष वर्णित होने परभी कोई भी जान नहीं सकते हैं। कयीं नहीं जान सकते हैं, उसको कहता हूँ।उक्त परमेश्वर की मायासे आच्छन्न बुद्धि होकर वे सव नाना (शास्त्र में अनेकत्व (पृथक्त्व) दर्शन करते हैं। सुतरां वहुशास्त्र,तन्त्र निगमादि श्रवण,एवं वहु पुराण प्रभृति वा पाठ कर सज्जनों की युक्ति समाश्रय पूर्वक लीलाविग्रहधारी परमानन्द घन श्रीकृष्ण के परम निगूढ़, सतत विख्यात अथच ब्रह्मा प्रभृति काभी दुर्ज्ञेय,यशः लीलादि का कीर्त्तन यत्नके साथ कर रहा हूँ ॥९॥

कोई कोई तर्कवादिगण पुराणवचनों का समादर नहीं करते हैं, इसविषय वृहन्नारदीय के प्रथम अध्याय में वर्णित है, जो नराधम

१३। यावद् ब्रह्मा सृज्यतेतज्जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
तावत् स पच्यते पापी नरकाग्निषु सन्ततम् ॥

यथा पुराणानि समस्तानि वेदाङ्गानि तस्माद् वेदानामनादरेण एवं भवत्येव,नान्यथा एव,यथा वृहन्नारदीये ॥ (९-१०५)

१४। वेदव्यासस्तु धर्मात्मा वेदशास्त्र विभागकृत् ।
प्रोक्तवान् सर्व धर्माणि पुराणेषु महीयते ॥
तदेवं श्रुतिस्मृत्यादि सम्मत समस्त धर्मशास्त्र समुद्दिष्टं ।
श्रीकृष्ण चरण भजनमिति विधेयम् ॥१०॥

अतः सर्वोपासनमपास्य सर्वोपास्य श्रीकृष्णचरणारविन्द-शरणं कर्त्तव्यमिति श्रेयः यथा——

१५। तस्माद् गोविन्दमाहात्म्यमानन्दरससुन्दरं ।
शृणुयात् कीर्त्तयेन्नित्यं स कृतार्थो नसंशयः ।

तथा १६। कर्मणामनसावाचा सर्वभावेन चाच्युतं ।
भजन्ति परया भक्त्या लभन्ते पदमव्ययम् ॥

पुराण समुह में (सामान्य स्तुतिवाद)अर्थवाद मानता है। उन सब का पुण्य हीं उन सवको निर्मूल कर देता है, जव तक ब्रह्मा सृष्टि कार्य में नियुक्त रहते हैं, तव तक वह पापी नरकानल में दग्ध होता रहता है। पुराण समुदाय वेदाङ्ग ही है, सुतरां वेद के अनादर से नरकपात अवश्यम्भावी है, वृहन्नारदीय में कथित है—धर्मातमावेदव्यास वेदशास्त्र का विभाग कर पुराण समूह के द्वारा निखिल धर्माचरण का उपदेश प्रदान किये हैं। अतएव वेदस्मृति प्रभृति सकल शास्त्र में समुद्दिष्ट श्रीकृष्ण चरण भजन ही श्रेष्ठ है ॥१०॥

सकल देव देवी की उपासना को छोड़ कर सवके उपास्य श्रीकृष्ण चरण पद्म शरण ही कर्त्तव्य है, यह ही श्रेय (आत्यन्तिक

१७। तस्माद् भारत । सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः ।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यश्चेच्छताऽभयम् । भाः(२-१-५)
तथा विष्णुधर्मोत्तरे-१८। परमार्थमशेषस्य जगतः प्रभवाप्ययम्
शरण्यं शरणं गच्छन् गोविन्दं नावसीदति ॥
तथा ब्रह्मा—१९। कल्पवृक्षं समाश्रित्य फलानिस्वेच्छयायथा
गृह्णाति पुरुषो राजन् तथा कृष्णात्मनोरथान् ।
तथा ब्रह्मसंहितायां-५-६१। धर्मानन्यान् परित्यज्यमामेकंभज-
विश्वसन् । यादृशी यादृशी श्रद्धासिद्धिर्भवति तादृशी ॥११॥
तथा एकं श्रीकृष्णचरणाब्जं भजनीयमिति । यथा
अथर्वोपनिषदि गोपालतापनिये (पूर्व२०-२१-२२)

मङ्गल निदान है। परीक्षित महाराजके प्रति श्रीशुकदेव की उक्ति इस प्रकार है-आनन्द रस सुन्दर गोविन्द माहात्म्य श्रवण कीर्त्तन करने से जीवकृतार्थ होता है, इस में सन्देह नहीं है.जो लोक काय वाक्य मनसे सर्वभावसे श्रीकृष्ण का भजन करते हैं वे सब अव्यय पद लाभ.करते हैं। अतएव हे परीक्षित ? अभय (निर्वृति) प्रार्थीजन, सर्वात्माभगवान् श्रीहरिका श्रवण कीर्त्तण स्मरणादि करे । विष्णुधर्मोत्तर में कथित है—परमार्थभूत, निखिल जगत के सृष्ठि स्थितिलय कारी शरण्य श्रीगोविन्द की शरणागत जन कभी भी अवसन्न नहीं होता है । ब्रह्म पुराण में उक्त है—मानव कल्पवृक्ष समाश्रित होकर जिस प्रकार स्वेच्छा से विविध फल प्राप्त करते हैं, उस प्रकार श्रीकृष्ण चरण भजन करने परभी निखिल वाञ्छा की पूर्त्ति होती है । ब्रह्म संहिता में उक्त है–अन्यान्य सकल धर्म परित्याग पूर्वक एकमात्र मेराभजन विश्वस्त चित्तसे करे। श्रद्धान्नुरुप सिद्धि लाभ भी अनिवार्य होगा ॥११॥

एकमात्र श्रीकृष्ण चरण पद्म ही भजनीय है, श्रीगोपालतापनी में इस प्रकार लिखित है-- एक 'मुख्य स्वयं भगवान्' प्रकृति काल

२१। एकोवदशी सर्वगः कृष्णईड्य एकोऽपिसन् वहुधा योऽवभाति
तं पीठस्थं येऽनुयजन्तिधीरास्तोषां सुखं शाश्वतंनेतरेषाम् ॥

२२। नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां
मेको वहूनां यो विदधाति कामान् ।
तं पीठगं येऽनु पश्यन्ति विप्रा
स्त्वेषांसिद्धिः शश्वती नेतरेषाम् ॥

इतिज्ञात्वा विलम्वो न कर्त्तव्यः। यथा श्रीभागवते एकादश स्कन्धे नवमाध्याये चतुर्विंशति गुरु प्रसङ्गे—

२३। ब्राह्मण उवाच—लब्धा सुदुर्लभमिदंवहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीहधीरः ॥
तूर्णं यतेत न पतेदनु मृत्युयाव
न्निःश्रेयसायविषयः खलुसर्वतः स्यात् ॥

तथा (भाः१-६-१) दैत्यवालकान् प्रति प्रह्लादवचनम्—

२४। कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभो मानुशोदेहस्तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

यथा (भाः१०-३-२७) देवकीस्तुतिः—

का नियामक, सर्वग(विभु) श्रीकृष्ण ही स्तवनीय है। आप एक होकर भी (एकत्वकात्याग न कर ही) नारायणादि वहुरूप में नित्य प्रकाशित होते हैं, जोसव धीरव्यक्ति, पण्डित व्यक्तिगण योग पीठस्थ उनका भजन करते हैं, उन सवको नित्य सुख प्राप्ति होता है, दुसरे केलिए वह सम्पूर्ण असम्भव है। नित्य (वस्तु व्यक्ति) गणकीभी नित्यता का विधायक सचैतन्य प्राणिनिचय केभी चैतन्य सम्पादक है, अथवा नित्य चेतन विरिञ्चि प्रभृति वहु जीवगण के (उपासनीय) यो नित्य चेतन एक (सारासारतत्त्व) वस्तु, वह सर्व कामना पूरण करते हैं। योगपीठस्थ

२५।　　मर्त्त्योमृत्युर्व्यालभीत:पलायन्

लोकान् सर्वान्निर्भयंनाध्यगच्छत् ॥

त्वत् पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य

स्वस्थ: शेतेमृत्युरस्मादपैति ॥

मृत्युरिति सदसत् कर्मणा यमवशोभूत्वा तत्तत् कर्मफलं भुक्त्वा पुनर्जायते'-इतिगर्भवासयातनाप्राप्यते इतिमृत्यु: । एतदेव श्रीकृष्णचरणपरायणानां नैवं, एतद् भौत्तिकं शरीरं त्यक्त्वा नित्यसिद्धदेहं प्राप्य श्रीकृष्णदासा भवन्तीत्यमुत्र इति॥१२॥

तस्मात् श्रीकृष्णचरण भजनमेव कर्त्तव्यमितिनान्यत्, यथा (भा:३-९-१५)

२६।　　यस्यावतारगुणकर्म्मविड़म्बनानि

नामानि येऽसुविगमेविवशा गृणन्ति ।

तेऽनेकजन्म शमलं सहसैव हित्वा

संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥

उनका नित्य भजन करने से ही इदानीन्तन ब्राह्मणगणभी शाश्वत (अक्षय) सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त करते हैं। यह तत्व जानकर और भजनके लिए विलम्ब करना उचित नहीं है, श्रीभगवान का कथन है- अनेक जन्मके बाद अनित्य होने परभी पुरुषार्थ साधक मनुष्य देह कोदैब क्रमसे प्राप्तकर धीर व्यक्ति कालक्षेप न कर जब तक मृत्यु नहीं आजाती हैं तब तक नि: श्रेय स परम निर्वृ ति लाभ के लिए अनलस प्रयत्न करे। बिषयरस सबशरीर में ही मिलता है। श्रीप्रह्लाद-जीने दैत्य बालकों को कहाथा-प्राज्ञव्यक्ति कुमारकाल से ही भागबत धर्म का आचरण करे कारण मानब देह अनित्य, दुर्लभ एवं परम

यथा विष्णु पुराणे यमउवाच—

२७। अहममरागणार्च्चितेन धात्रा
यम इति लोकहिताय सन्नियुक्तः।
हरिगुरुविमुखान् प्रशास्यमर्त्यान्
हरिचरण प्रपन्नान् नमस्करोमि ॥
तस्मात् श्रीकृष्ण चरण भजनं
कर्त्तव्यमितिनान्यत् ॥ तथा(भा:१०-१४-५८)

पुरूषार्थ साधक हैं। देवकी देवी की स्तुति मैं उक्त हैं- हे आद्य हे सर्वश्रेष्ठ मरन धर्मा जीव मृत्यु भयसे भीत होकर पलायन करते करते कहीं भी अभय प्राप्त नहीं करता हैं किन्तु अनिर्वचनीय भाग्य से याद्दच्छिक महत् कृपालब्ध भक्तिके बलसे तुम्हारे चरण स्पर्श पाकर निर्भय होजाता हैं। मृत्युभी भागजाती हैं। मृत्युशब्द गर्भयातना का सूचक हैं। श्रीकृष्णचरण आश्रय लेने बाले का भयनहीं हैं, वे लोक यह पाञ्चभौतिक शरीरको छोड़कर नित्यसिद्ध देह प्राप्ति पूर्वक श्रीकृष्ण दासत्व को प्राप्त करते हैं। ॥१२॥

सुतरां श्रीकृष्ण भजन ही कर्त्तव्य है, अन्य कर्म अकर्त्तव्य। प्रमाण (भा:३-९-१५। जो जन प्राणत्याग के समय बिबश होकर जिन के नाम गुण कर्म प्रभृति बोधक नामावलि का केवल उच्चारण करते हैं, वे लोक तत्क्षणात् बहुजन्म अर्ज्जित पाप पुञ्जको छोड़कर सत्य स्वरूप श्रीहरिको प्राप्त करते हैं। उनकी शरण लेता हुँ। बिष्णुपुराण मे यमराजके वाक्य, श्रीप्रभु मुझे यम नाम देकर लोक हितके लिए नियुक्त किए हैं मैं हरि गुरु चरण विमुख व्यक्तिको दण्ड देता हुँ, और हरिचरण प्रपन्न व्यक्ति को नमस्कार करता हुँ। अतएब हरिचरण भजन ही एकान्त भावसे करणीय है, (भा: १०-१४-५८) जो-जन महाजनके आश्रय स्वरूप, मनोहर कीर्त्ति मण्डित परमसुखद पद पल्लव रूप श्रीहरिचरण भेला का आश्रय लिए हैं, उनके आगे भव-

२८। समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवंमहत्पदंपुण्ययशो मुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदंपरं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥
तेषां परं पदं भवति तदिति श्रीकृष्णचरणारविन्द परमानन्द रसे परिपूर्णो भूत्वा तिष्ठति जन्ममृत्युवर्जितः यथा श्रीभगवद्-गीतासूपनिषत्सु अर्ज्जुनं प्रति श्रीभगवान् उवाच-(९-३१।) कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् संधारयाम्यहम्। तथा काशीखण्डे-ध्रुव-चरिते श्रीभगवानुवाच—

२९। न च्यवन्ते हि मद्भक्तामहतः प्रलयापदि,
अतोऽच्युतोऽखिले लोके भगवान् परिकीर्त्यते।

तथा दशमे (२-३३) ब्रह्मस्तुतिः।

३०। तथा न ते माधवा तावका क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयिबद्धसौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ताविचरन्तिनिर्भया
बिनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो ॥

३१। भगवन्तं प्रति उद्धव उवाच—
प्रतिज्ञा तव गोविन्द न मे भक्तः प्रणश्यति
इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् सन्धारयाम्यहम् ॥

सिन्धु वत्स पदके समान है, वे लोक परमधाम श्रीवृन्दावन को प्राप्त करते हैं, उनसब की बिपत्ति नहीं होती है। श्रीप्रभुने अर्ज्जुन को कहा है—मेरा भक्तका प्रकृष्टनाश नहीं होता है, काशीखण्ड में उक्तहै मेरा भक्त कभी भी स्खलित नही होता है, अत मेरा नाम अच्युत है। ब्रह्मस्तुति में उक्तहैं, हे माधव! आपके साथ सौहार्द स्थापन कारी

इत्येवं भगवद् भक्तानां नापद इति ज्ञापनीयम्। ततः सर्वानन्यान् विहाय श्रीकृष्णचन्द्रचरणारविन्द भजनमेव श्रेयः अनन्य भावेनेति ॥

३२। एतत् श्रीहरिपादपद्म भजनोद्देशोज्ज्वलंनिर्म्मलम् ।
वज्रं रत्नमिदं समस्ततनुभृद्हृद्ध्वान्तविध्वंशंनम् ॥
ज्ञात्वानेन कुरुष्व सादरतया कर्णावतंसंसुधी ।
धीरस्यापि निवेदनं शृणुमम श्रीराघवस्थासकृत् ॥१३॥

**** इति प्रथमरत्नम् ॥१॥ ****

** द्वितीयःप्रकाशः **

—*—

१। अथ प्रवक्ष्ये श्रीकृष्णपादाम्वुजनिषेवणम् ।
समस्त शास्त्रविहितं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥

व्यक्ति का ज्ञानी के समान पतन नहीं होताहै, वे लोक विघ्नके मस्तक पर पैर घर कर वैकुण्ठारोहण करतेहैं, उद्धवजीने श्रीगोविन्दजी को कहाथा- आपका भक्त कभी भी नाश प्राप्त नहीं होता है। अतएव अनन्यभावसे अन्यसव कर्मत्याग कर धर्मको छोड़कर श्रीकृष्ण चरण कमल भजन श्रेयस्कर है ॥१३॥

इति श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाशे श्रीकृष्णचन्द्र चरण
भजनोद्देशोनाम प्रथमंरत्नम् ॥१॥

अनन्तर श्रीकृष्णचरणाम्वुज का निषेवण को वलूँगा, वह समस्त शास्त्रविहित,एवं सकल उपासनाओंसे उत्तम सेभी उत्तम हैं। इसको शुनकर कुछलोक कहते हैं कि-अहो इस प्रकार उपास्य अनेकानेक देवता है, नानातीर्थ है, अनेक प्रकार सत् कर्म प्रभृति हैं, सवसे उत्तम तो ब्रह्मोपासना है ही, इन सवों मेंसे एक किसी की उपासना से

अथ इत्याकर्ण्य केचिद् वदन्ति,–अहो एवं नानादेवताः सन्ति, नानातीर्थानि सन्ति, नानासत्कर्मादीनि सन्ति, सर्वेषामुत्तमम् ब्रह्मोपासनमस्ति, एतेषामेकोपासनेन श्रेयो भवति, किमनेन ? तत्र कृष्णचरण परायणावदन्ति, स्वर्गभोगिनो देवा यदेवतत्

श्रूयतां, ते सर्वेनश्वराः किन्तेषामुपासनेन ? ।।१।।

२। यथा–तावत् प्रमोद्यते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते ।
क्षीण पुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः । (भाः११-१०-२६

तथा गीतायां श्रीभगवानुवाच (९-२०-२१)

३। त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापायज्ञै रिष्ट्वास्वर्गातिप्रार्थयन्ते
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिविदेवभोगान् ।।

४। ते तंभुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये
मर्त्त्यलोकंविशन्ति, अतो देव सेवनेन किं ?

तथा ब्रह्मादीनामप्येवं,किमन्येषां ? यथा-(भाः११-१०-३०)

श्रेयः होगा। श्रीकृष्णोपासना की आवश्यकता ही क्या हैं। इस विषय में श्रीकृष्णचरण परायण व्यक्तिगण कहते हैं, स्वर्ग भोगी देव–गण जिस प्रकार हैं उसका विवरण सुनो। वे सब नश्वर हैं। उनसब की उपासनासे क्या लाभ हैं ।।१।।

जब तक पुण्य की स्थिति है तब तक ही स्वर्ग में आनन्द भोग होगा, पुण्य के क्षय से कालवशसे पुनर्वार संसार प्रवाह में गिरना पड़ेगा। श्रीगीतामें भी श्रीभगवानने कहाहै वेदत्रयोक्त कर्म्मपरायण ज्योतिष्टोमादि यज्ञके विधानसे इन्द्रादि देवगण मेरा ही रूप है, यह न जानकर वास्तविक रूपमें उनउन रूपमें अवस्थित मेरी अर्च्चना कर यज्ञशेष सोमपानके अनन्तर पापनाश होने पर स्वर्ग की प्रार्थना करते हैं, वे सब पुण्य लभ्य लोक प्राप्तकर विविध दिव्य भोग करतेहैं, पुण्य क्षय होने पर मर्त्यलोक में पुनर्वार आकर ब्राह्मणादि देह को

५। श्रीभगवानुवाच-लोकानां लोक पालानांमद्‌भयंकल्पजीविनाम्
ब्रह्मणोऽपि भयंमत्तोद्धिपरार्द्धपरायुषः ॥

एवं नानातीर्थानि– यथा श्रीभागवते (१२-३-४८)

शुक उवाच—

६। विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्त शुद्धिलभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥

तथा ७। किं वेदैः किमुवाशास्त्रैः किम्वातीर्थाभिषेचनैः ?
कृष्णभक्तिविहीनानां किं तपोभिः किमध्वरैः ?

अथ नाना धर्मकथा यथा—(भाः११-१४-२२)

८। धर्मसत्यादयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्‌भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुणाति हि ॥

प्राप्त करते हैं। अतएव देवसेवासे कुछ भी लाभ नहीं है, ब्रह्मादिक सम्बन्ध में भी यही बात है, अपर देवदेवी की तो बात ही क्या है ? प्रमाण-(भाः११-१०-३०) लोक समूह, कल्पजीवी लोक पाल गण, द्विपरार्द्धकाल परमायु विशिष्ट ब्रह्मा मेरे भयसे भीत होते हैं। (२-३-४-५)

नाना तीर्थोपासना के सम्बन्धमें श्रीशुकदेव कहतेहैं, (भाः१२-३-४८) भगवान् अनन्त हृदयमन्दिरमें वास करने से अन्तरात्मा की शुद्धि जिस प्रकार होती है, उस प्रकार विद्या देवतोपासना तपः, प्राणायाम, मैत्री, तीर्थसेवा व्रत, दान, एवं जप प्रभृति द्वारा भी नहीं होती है, इस प्रकार वेदाध्ययन, शास्त्रचर्चा तीर्थ निषेवण, तप, यज्ञ प्रभृति, श्रीकृष्णभक्तिहीन जनको कुछभीफल प्रदान नहीं करते हैं। ।।६-७।

नाना धर्मकथा सम्वन्ध में (भाः११-१४-२२) सत्य, दयायुक्त, तपस्यायुक्त, विद्या(ज्ञान) मद्‌भक्ति विहीन आत्माको सम्यक् प्रकारसे पवित्र करनेमें समर्थ नहीं है। (भाः१०-४७-२४) विष्णु वैष्णवको दान, एकादशी आदि व्रताचरण, कृष्णार्थ भोगादित्याग, तपस्या

तथा श्रीशुकउवाच (भाः१०-४३-२४)

९। दान व्रत तपो होम जप स्वाधयायसंयमैः ।
श्रेयोभि र्विविधैश्चान्यैः कृष्णोभक्तिर्हि साध्यते ॥

१०। तथा(१-२-८)धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां वासुदेव कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अतएव श्रीकृष्णचरण सेवनंविना न किमपि, यथा ब्रह्मादयः सर्वे नश्वराः, नश्वरोपासनेननश्वरो भवतीति तदुद्देशेन तपस्यया वा किं ? स्वयं नश्वरा ये, ते किं शाश्वततत्वं दास्यन्ति ? नानाधर्म कर्मणावा कि ? कर्मबन्धाय कल्पते यथा (श्रीभाः१०-५१-५५)

११। मुचुकुन्दस्तुतिः—न कामयेऽन्यं तव पादसेवना
दकिञ्चन प्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ।
आराध्यकस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे
वृणीत आर्य्यो वरमात्मबन्धनम् ।

वैष्णवहोम, विष्णुमन्त्रजप, उपनिषद्पाठ, इन्द्रियसंयम, एवं अन्यान्य श्रेयः साधन, भक्तसङ्ग आचरण द्वारा श्रीकृष्णमें भक्तिही एकमात्र साधित होतीहै (भा:१-२-८) । उत्तम रूपसे आचरित सुसम्पन्न धर्म द्वाराभी यदि श्रीकथामें रति नहीं होती ही तो वह सब अनुष्ठानसे केवल श्रमही लाभ होताहै ॥८-९-१०॥

अतएव श्रीकृष्णचरण सेवाको छोड़कर सकल साधनही अकिञ्चित् करहै । देखो ना क्यों ? सवही नश्वरहैं, नश्वर की उपासना करने पर नश्वरही होना पड़ताहै, सुतरां भोगकी कामनासे नश्वर वस्तुकी उपासनासे लाभ क्याहै ? जोलोक स्वयं विनाशशीलहै, वे लोक क्या शाश्वततत्वदान करेगा ? विविध धर्मानुष्ठान काभी फल

तथैव ब्रह्मोपासनेनकिम् ? ब्रह्मापिशून्यम् । शून्योपासनेन शून्यत्वं प्राप्नोति । यथाश्रुतिः- यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशीति शून्योपासनेन किम् ? नित्याक्षय परमानन्द सुख स्वरूप-श्रीकृष्णचन्द्र चरणारविन्द प्रेमामृत मधुपानेन वञ्चितः स्यात् ॥१॥

२। अथ मुमुक्षुणोक्तम् नैतत्तदाकिम् ? यदिदेहादे र्मुक्तिर्भवति, तदा किं न भूतम् ? तत् प्रत्युत्तरमेव यथा- सोऽहमितिज्ञान निश्चयेन निर्वाण मुक्तिर्भवति, तेनकिम् ? मुक्तिः किमिति यथा श्रीभागवते ।

१२। भक्तिर्भगवतः सेवा मुक्तिस्तत्पदलङ्घनं ।
स मूढ़ः सेवकादन्यो मुक्तिं निर्वाण मिच्छति ॥

तथा वाल्मीकीये रामचन्द्रं प्रति हनूमतोक्तं—

१३। भवबन्धच्छिदे तस्यै स्पृहयामि न मुक्तये
भवान् प्रभुरहंदास इति यत्र विलुप्यते ॥

क्याहै ? उससे कर्म्मबन्धनही बढ़ताहै, (भाः१०-५१-५५) में मुचुकुन्द को स्तुति इसप्रकारहै-हे प्रभो निष्किञ्चनगणके प्रार्थनीयतम तुम्हारे चरण सेवन को छोड़करमैं अन्यकुछभीवर नहीं चाहताहूँ। हे हरे ! भक्तिप्रद तुम्हारी आराधना कर कौन व्यक्ति विवेकी होकर निज संसार बन्धन को मागेगा ? ॥११॥

तद्रूप ब्रह्मोपासना भी निष्फल है, ब्रह्मशुन्य, अपाणिपाद, अचक्षु: अकर्ण निरीह, निर्गुण, नीरूप' इत्यादिहै। सुतरां शून्यकी आराधनासे शून्यत्व, (निर्विकल्प समाधिमैं त्रिपुटीलय) होताहै। कारण वेदमें वर्णितहै—जिसको भावना जैसी सिद्धिभी वैसी होतीहै इससे नित्य अक्षय परानन्दधन श्रीकृष्णके चरणारविन्द प्रेमामृतमधु पानसे वञ्चित होनाही पड़ताहै ॥१॥

तथा भावार्थ दीपिकायां ब्रह्मोवाच—

१४। त्वत् कथामृतपाथोधौ विहरन्तोमहामुदः ।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ।।

अतएव श्रीकृष्णे भक्तिः साध्या, यथा श्रीभागः

१५। चतुर्षु पुरुषार्थेषु गूढ़ोऽयं भक्तिसंज्ञकः ।
द्विजा एवहि जानन्ति मुनयो नारदादयः ।।

तथा मुक्ते र्भक्ति र्गरीयसी, यथा श्रीभागः(३-२५-३२)

१६। अनिमित्ता भागवतीभक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलोयथा ।।

इति तत्र मुक्ते र्भक्तिः सुदुर्ल्लभा यथा श्रीभागः(३-६-१८)

१७। राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां ः
दैवं प्रियः कुलपतिः क्वचकिङ्करो वः ।।

सम्प्रति मुमुक्षुओं की आपत्ति इस प्रकारहै, तुम्हारे सिद्धान्त मानने के योग्य नहीं है, देहबन्धन मुक्त होने से क्या बाकी रहता है ? इसका उत्तर यह है कि सोऽहम् ब्रह्मही मैं हूँ. यह ज्ञान होने पर यदि निर्वाण मुक्ति होतीहै, तब साधक का क्या हुआ ? भागवत कहतेहैं- भगवत् सेवाको ही भक्ति कही जातीहै, एवं भक्तिमर्य्यादा लङ्घन को मुक्ति कहते हैं। जो जन निर्वाण मुक्ति को चाहता है वह सेवक नहीं है, उसको मूढ़ कहा जाता है। बाल्मीकी रामायणमें संवादहै, श्रीराम-चन्द्र को हनूमान् जी कहतेहैं—भवबन्धन नाशिनी मुक्ति की कामना नहीं करताहूँ। जिससे प्रभु और दास भाव विलुप्त हो जाताहै। भावार्थ दीपिकामें उक्तहै—ब्रह्मा कहतेहैं-आपकी कथारूप अमृत समुद्रमें विहरणशील सुकृतिशील भक्तगण चतुर्वर्ग को तृणवत् मानतेहैं। (१२-१४)

अतएव श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्तिही साध्यपदार्थहै, यथा श्रीभाः में पुरुषार्थ चतुष्टयके मध्यमें भक्ति नामक पुरुषार्थ निगूढ़है, द्विजगण एवं

अस्त्येवमङ्ग भजतां भगवान् मुकुन्दो ।

मुक्तिंददाति कर्हिचित् स्म नभक्तियोगम् ॥

किन्तु साधवोऽपि मुक्तिं नवाञ्छन्ति यथा (भाः११-२०-३४)

१८। न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ताध्येकान्तिनोमम ।

वाञ्छन्त्यपि मयादत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥२॥

३। अथात्र केचिदाध्यात्मिका वदन्ति-अहो ! कृष्णंयद्‌वदसि, सएवशरीरी, रूपवान् परिच्छिन्नावयवश्चाक्षुष्यः, अतः सएव भौतिकः, भौतिकत्वात्स्थुलः, स्थूलत्वान्नश्वरः, नश्वरोपासनेन किमिति ? एकं कृष्ण एव उपासनीय इति यदुक्तं तदत्यन्तासम्भावनीयोपदेशः, एषवेदान्तशास्त्रैरनभिधेयः, यथा वाशिष्ठ-

रामायणे श्रीरामचन्द्रं प्रति वशिष्ठेनोक्तम्—

१९। यदिदंदृश्यते सर्वं जगत् स्थावर-जङ्गमम् ।

तत् सुषुप्ताविवस्वप्नः कल्पान्ते प्रविनश्यति ॥

नारदादि मुनिगणही केवल भक्ति तत्त्व के ज्ञाताहैं, एवं मुक्तिसे भक्ति गरीयसी है.(भाः३-२५-३५) अहैतुकी भागवती भक्ति, मुक्तिसे श्रेष्ठहै, जिस प्रकार जठरानलभुक्त द्रव्यादि को जीर्ण करतीहै. उसप्रकार भक्ति सत्वर लिङ्ग कोशको दग्ध करदेतीहै । मुक्ति सेभी भक्ति सुदुर्लभाहै, (भाः५-६-१८) हेराजन् भगवान् मुकुन्द यदुओं के पति(पालक)गुरु, हितोपदेष्टा, दैव(उपास्य), प्रिय(सुहृद्।, कुलकेनियन्ता, एवं कभी कभी दूत कार्यके लिए किङ्कर भी होतेहैं, जो लोक भजन करतेहैं, उनको मुकुन्द प्रायश मुक्तिही देतेहैं, भक्तिप्रदान करना नहीं चाहतेहैं । साधकगण मुक्तिनहीं चाहतेहैं. (भाः११-२०-३४) एकान्त भक्तगण कैवल्य नहीं चाहतेहैं अन्यवस्तुको तो बातही क्या है ? (१५-१८) ॥२॥

इस विषयमें अध्यात्मवादीगण कहतेहैं, अहो ! कृष्णको उपास्य कहतेहो, वह तो शरीरी, रूपवान् ससीम, अवयवयुक्त चक्षुगोचरहैं ।

तथोद्धवं प्रति श्रीभगवान् वासुदेव उवाच-(भा:११-७-७)

२०। यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणञ्च विद्धिमायामनोमयम् ।।

अतएव सर्वं मायामयमिति मत्वा नित्यं निराकारंनिरञ्जनं निर्लेपञ्च ब्रह्मोपास्यमिति तथैवोक्तं वाशिष्ठे वशिष्ठेन,–

२१। आस्तेऽनस्तमित भास्वान् यो देवो हि निरामयः ।
सर्वदा सर्वकृत सर्वः परमात्मा महेश्वरः ।।

२२। अन्तः करण तद्वृत्ति साक्षी चैतन्यविग्रहः ।
आनन्दरूपः सत्यः सन् किं स्वात्मानं प्रपद्यसे ।।

तथाष्टावक्रसंहितायाम्—

२३। अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽयं प्रकृतेः परः ।
एतवन्तमहं कालं हा मोहेन विड़म्बितः ।।

अतएव भौतिकहैं, भौतिकसव स्थुल होतेहैं, अतएव नश्वरहैं, नश्वर की उपासनासे लाभही क्या है ? अतः कृष्णही उपास्य है यह कहना असम्भावनीय उपदेशहै । यह कृष्णोपासना वेदान्तमें अभिधेय रूपमें स्वीकृत नहींहें । प्रमाण योगवाशिष्ठमें श्रीरामचन्द्रके प्रति वशिष्ठ कहते हैं, यह दृश्यमान स्थावर जङ्गमात्मक जगत् सुषुप्तिके स्वप्नकी भाँति कल्पक क्षय होने पर विनष्ट होताहै ।।१९।।

श्रीभाः(११-७-७) में उद्धवको श्रीभगवान् वासुदेवने कहाहे । मन, वाक्य, चक्षु, श्रवणादि इन्द्रिय समुह द्वारा इस जगत्में जो कुछ ग्रहण किया जाताहै, वे सव मनोमय काल्पनिक, मायिक, एवं नश्वर है । अतएव सकल वस्तुको मायामय जानकर नित्य निराकार निरञ्जन निर्लेप ब्रह्मकी उपासना करना कर्त्तव्यहै । योग वाशिष्ठमें कथितहै–सदा सर्वत्र समान रूपमें उदित परम तेजोमय, निरामय, सर्वकृत् पूर्ण महेश्वर परमात्मा सर्वदा विराजमानहै, इस प्रकार श्रुतिवाक्यमें उक्तहै–अन्तः

तत्र कार्ष्णाविदन्ति-य एव रूपगुणवर्जितः, अचलस्त्व कर्त्ता, कायमनोवाक्यैरग्राह्यः स एव न किञ्चित्; तत्र ब्रह्म ज्ञानी वदति, एवंनेति। यथा श्रुतौ (श्वेः३-१८)

२४। अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्तिविश्वं न हि तस्य वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।।

तत्र भागवता वदन्ति, अहोवैचित्र्यम् ! सोऽस्तीति पण्डिता वदन्ति, तस्य वेत्ता नास्तीत्यपि वदन्ति च। अतएव अस्ति नास्तीति सन्देहः। यत्र सन्देहस्तस्यान्वेषणेन किमिति ? ततो ब्रह्मवादी वदति-अहो ! अस्ति नास्तीति सन्देहोज्ञान-रहितानाम्, अस्तीति निःसन्देहः, तत् श्रूयतां यथाश्रुतौ (ब्रह्म विन्दूपनिषत्)

२५। घृतमिव पयसि निगुढ़ भूतेभूतेवसति च विधानम् ।
सततंमन्थयितव्यं, मन्थनभूते प्रकाशते आत्मा ।।

करण एवं उनकी वहिर्वृत्ति साक्षी, चैतन्यमय, आनन्द स्वरूप, सत्य निर्विकार होकर भी आतमस्थ क्यों नही होताहै ? अष्टावक्रसंहितामें उक्तहै-अहो ! यहवोध (ब्रह्मज्ञान) निरन्जन (गतक्लेश), शान्त एवं प्रकृत्यतीतहै, हाय यह सुदीर्घकालमें मोहमें ही रहा ।।२०-२३।।

इसके उत्तरमें कार्ष्णीगण कहतेहैं, जो नीरूप, निर्गुण, अचल, अकर्त्ता कायमनो वाक्यके अगोचर है वह वेकारहै, उसमें ब्रह्मज्ञानी कहतेहैं, ना, इस प्रकार नहीं है, श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में उक्तहै, ब्रह्म के कर चरण न होने परभी गमन करतेहैं' चक्षु कर्ण न रहने परभी दर्शन श्रवण करतेहैं, आप विश्व वेत्ताहैं, किन्तु उनके ज्ञाता कोई नहींहै' सर्वश्रेष्ठ पुराण पुरुषरूपमें आप प्रसिद्धहैं ।।२४।।

उत्तरमें भागवत गण कहतेहैं,-अहो ? क्यैसी बिचित्र कथाहै ? पण्डितगण उनके अस्तित्व स्वीकार करतेहैं, अथच उनका ज्ञाता नहीं

२६। दृश्यश्च—

राहुरदृश्योऽपि यथाशशिविम्वस्थः प्रकाशते जगति ।
तथासर्वगतोऽपि आत्मा वुद्धिस्थोदृश्यतामेति ॥

२७। कर्त्ताच,—

सवितरि उदिते यद् वत् करोति कर्माणि लोकोऽयम् ।
न च तानि करोति रवि र्न कारयति वा तद्वदात्मा ॥

तथा हस्तामलके (श्लोकः १)

२८। निमित्तं मनश्चक्षुरादि प्रवृत्तौ,
निरस्ताखिलोपाधि प्रकाशकल्पः ॥
रविर्लोकचेष्टानिमित्तं यथायः,
स नित्योपलब्धि स्वरूपोऽहमात्मा ॥

है, ऐसाभी कहतेहैं ! अतएव है, अथवा नहीं ? इसमें ही सन्देहहै, जिसके वारेमें संशयहै उसको अन्वेषण करके लाभ नहींहै, तव ब्रह्मवादी कहते हैं, अहो। है अथवा नही ? यह सन्देह ज्ञानहीन व्यक्तिका होताहै, किन्तु ज्ञानवानगण 'है' शब्दसे सन्देहका निरास ही करतेहैं। इस विषयमे श्रुति कहतीहै–दूधके मध्यमें जैसे घृत निगूढ़ रूपसे रहताहै, मन्थनसे प्रकाश होताहै, तद्रूप सर्वदा ज्ञान मन्थन तत्त्वमस्यादि महावाक्यविचार करते करते आत्मा प्रकाशित होतीहै, यह आत्मा दृश्यहै, प्रमाण-स्वयं राहु अदृश्य होने परभी चन्द्रविम्वके निकर आकर प्रकाश प्राप्तहोताहै, तद्रूप आत्मा सर्वव्यापी होने परभी वुद्धिस्थ होकर दृष्टि गोचर होता है, ब्रह्म कर्त्ता भी होसकताहै। प्रमाण–सूर्य्यके उदयसे जैसे जीव जगत् की प्रवृति कर्ममें होतीहै, किन्तु सूर्य स्वयं कर्ममें लिप्त नहीं होताहै। उसी प्रकार आत्माके सन्निधानमें जीवका कर्त्तृत्व प्रयोजक कर्त्ता होने परभी आत्मा स्वयं कर्म नहीं करताहै। हस्तामलक भाष्यमें उक्तहै– जो मनश्चक्षुरादि इन्द्रिय समूह की प्रवृत्ति का कारणहै, जो अन्य पदार्थ

तत् प्राप्तावुपायो यथा श्रुतौ चित् प्रकाशे—

२९। अगमन्मे मनोऽन्यत्र साम्प्रतञ्च स्थिरीकृतम् ।
एवं यो वेत्ति धीवृत्तिं सोऽहमित्यधारयेत् ॥

एवमात्म ज्ञानदृष्ट्या दृश्यते प्राप्यते च वाशिष्ठे—

३०। मृगैर्यथा मृगाणाञ्च गजानाञ्च गजैर्यथा ।
पक्षिणां पक्षिभि र्यद्वत् ज्ञेयं ज्ञानेन गृह्यते ॥ इति ।

तदेवं ज्ञानेन ज्ञायते, अज्ञानानां न किमपि। अथैतत् श्रुत्वा श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरण परायणा वदन्ति, भवता यदुक्तं तत् किम् ? श्रीकृष्णचन्द्रस्यचरण वैभवं येन जानन्ति, त एव एवं वदन्ति, ते ऽति क्षुद्राः क्षुद्रमतयः सूक्ष्मं न पश्यन्ति । तत्र-

३१। ये कृष्णचरणाम्भोजमकरन्दमधुव्रताः ।
न भवन्ति परं क्षुब्धा स्ते नानापथ गामिनः ॥

से भिन्न, उपाधिशून्य आकाशके समान निर्लेप, जो सूर्य्यलोकादि चेष्टा का एकमात्र कारणहै मैं उस नित्य ज्ञान स्वरूप आत्माहूँ ॥२५-२८॥

.आत्मदर्शन का उपाय यथा- चित्प्रकाशमें मेरा मन विषयादि में विक्षिप्त हुआथा सम्प्रति स्थिर हुआहै, इस प्रकार जो वुद्धिवृत्तिको जान पायाहै वह ही सोऽहम यह तत्वावधारण कर सकताहै । इस प्रकार आत्मा ज्ञान नेत्रसे दृश्य व प्राप्य हो सकताहै। योग वाशिष्ठमें कथितहै- भृगगणके द्वारा भृगसमूहका गजगण द्वारा गजसमूहका, पक्षिगण द्वारा पक्षिगणका दर्शन व प्राप्ति होनेका सुयोगहै, उस प्रकार ज्ञान द्वारा ज्ञेय (ब्रह्मतत्त्व) भी गृहीत हो सकताहै ॥२९-३०॥

यहसव सुनकर श्रीकृष्ण भक्तगण कहतेहैं, आपने जो कुछ कहा, वे सवही अग्रहणीयहै, जो लोक श्रीकृष्ण वैभव नहीं जानतेहैं वे सव यह सव वात करतेहैं, वे सव अति क्षुद्रहैं, क्षुद्रव्यक्तिगण सूक्ष्म तत्त्व को धारण नहीं कर सकतेहैं । जो जन श्रीकृष्णचरणकमल मधु आस्वादन

यथा ब्रह्मादि स्तुति (भाः१०-२-२८)

३२। त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति, स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ।
त्वन्मायया संवृत चेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥

अतः सर्वोपरि श्रीकृष्णचन्द्र एक एव ज्ञानिभि र्ज्ञायते, यथा—

३३। कृष्णस्योपरि कश्चिद् वा तुल्यो भिन्नोऽस्ति यो वदेत् ।
न तस्य मामयाच्छन्नो नालपेत्तं कदाचन ॥

इत्येवं यत्किञ्चित् सर्वं श्रीकृष्णवैभवमितिमन्तव्यम् । (३)

अथ भगवतः श्रीकृष्णस्य भौतिकं प्राकृतं सगुणं देहमिति यदज्ञानादुक्तं तदिति श्रूयतां । यथा सम्मोहन तन्त्रे प्रथमपटले- नारदं प्रति सनक उवाच—

३४। तदानन्दमयी राधा तदानन्दमयोहरिः
न भौतिकोदेहबन्धस्तयोरानन्दरूपयोः ।

तथा (भाः१०-१४-२) वत्सहरण ब्रह्मस्तुतिः—

३५। अस्यापिदेव वपुषो मदनुग्रहस्य

परायणहै वे सव अनेक पथावलम्बन से क्षुब्ध नहीं होतेहैं ॥३१॥

प्रमाण देवस्तुतिमें (भाः१०-२-२८)हेभगवन् ! यह कार्यरूप संसार बृक्ष का जन्म आपसे ही हुआहै, आपही इसका लयस्थान एवं कर्त्ताहो । तुम्हारी मायासे आच्छन्नदृष्टि होनेसे ही लोक तुम्हें अनेक प्रकार देख हैं । किन्तु विद्वान् व्यक्तिगण तुम्हें सर्वत्र एकरूपही देखते हैं ॥३२॥

अतएव ज्ञानिगण जानतेहैं-कि सर्वोपरि एकमात्र कृष्णचन्द्रही विराजमानहैं, अतएव, कृष्णतत्त्वके उपर, उनका सदृश अथवा उनसे भिन्नकुछभीहै, ऐसा जो कह सकताहै वह मायामुग्धहै, उसके साथ वाक्या लाप करना उचित नहींहै । अतएव ब्रह्माण्डके सव वस्तुही श्रीकृष्णचन्द्रके वैभवहैं, ऐसा माने ॥३३॥ (३)

स्वेच्छामयस्यनतुभूतमयस्यकोऽपि ।

नेशे महित्ववसितुं मनसान्तरेण

साक्षात् तवैवकिमुतात्मसुखानुभूतेः ।

किन्तु श्रीकृष्णस्य विग्रहं भौतिकं यो वदति, तत्राह बृहद्वामन पुराणे—

३६। यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः ।

स सर्वस्माद् वहिष्कार्यः श्रौतस्मार्त्त विधानतः ।।

३७। मुखं तस्यावलोक्याथ स चेलो जलमाविशेत् ।

पश्येत् सूर्यं स्पृशेद्वारिं घृतं प्राश्यविशुद्धति ।।

स्थूलत्वं यदुक्तं तदिति यथा महा कौर्मे—

३८। अस्थूलश्चानणुश्चैव स्थूलोऽणुश्चैव सर्वतः ।

अबर्णः सर्वतः प्रोक्तः सवर्णश्च प्रकीर्त्तितः ।।

सम्प्रति श्रीकृष्ण देह भौतिक, प्राकृत, सगुण एवं स्थुल मानकर अज्ञान से जो आक्षेप उठाथा, उसका समाधान कहतेहैं- सन्मोहन तन्त्रमें नारदके प्रति सनककी उक्ति इस प्रकारहै- प्रेमानन्द मयी राधा प्रेमानन्दमय हरिहै, अमन्द स्वरूप युगलजोड़ीका भौतिक देह बन्धन नहीहैं, ब्रह्मस्तुति (भा:१०-१४-२) में- ब्रह्मा कहतेहैं हे देव ! मेरे नयन गोचर मत्प्रति कृपा परायण, एवं स्वेच्छामय (भक्तकीइच्छासे प्रकटशील, तुम्हारे शुद्धसत्वात्मक इस देहकी महिमा कोइ नहीं ज्ञान सकताहै। जव इस प्रकारही महिमाहै तव अन्तर्मनाः होकर भो तुम्हारे आत्मानन्दास्वादमय गुणातीत अवतारित्व की विन्दुमात्र धारणा भी कोइ कर सकताहै ? (३४-३५)

श्रीकृष्ण देहको जो जन भौतिक वोलताहै, उसके सन्दर्भ में वृहद्वामन पुराण की व्यवस्था इस प्रकार हैं-जो जन परमात्मा कृष्ण-विग्रह को भौतिक मानताहै, उसको वैदिक एवं स्मार्त्त विधि वहिर्भूत

तथा शुकोक्तिः (भाः२-१०-३५)

३९। अमूनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते ।
उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥

अतः स्थूलरूपं यत्रद् भगवन्माययासृष्टम्, एतयोः परं श्रीकृष्ण चन्द्रः, यथा गोविन्दवृन्दावने भगवति श्रीकृष्ण बलराम प्रश्ने—

४०। परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।
शब्द ब्रह्ममयः साक्षात् स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ।
आद्यन्तरहितः सूक्ष्म स्थूलातीतः परात्परः । (४)

अथ परं ब्रह्मोपासनमिति यदुक्तं तद्ब्रह्म यत्तत् श्रूयताम् । यथा बराह संहितायां (२-५३-५५) श्रीभगवान् बराह उवाच (श्रीकृष्णचन्द्रस्य यथारूपम्)

४१। ध्वज वज्राङ्कुशाम्भोजकराङ्घ्रितलशोभितम् ।
नखेन्दु किरण श्रेणी पूर्ण ब्रह्मैक कारणम् ॥

जानना होगा। उसका मुख देखने पर सवस्त्र स्नान, सूर्यदर्शन, जलस्पर्श घृतभोजन करनेसे शुद्धि होतीहै ॥३६-३७॥

स्थुलत्व का परिहार करतेहैं (महाकूर्मपुराणमें) अस्थुल अनणु वृहत्तम होकर भी सर्वथा स्थुल, अणुनीरूप होकर भी सरूप कीर्त्तित होतेहैं । भगवत्तत्त्वमें सकल विरोध का समाधान होताहै । (भाः२-१०-३५) श्रीशुकवाक्य-भगवान्में आरोपित स्थुल सूक्ष्न रूपद्वय तुम्हे मैंने कहा, शुद्धभक्त पण्डितगण यह दोनों को मायाकल्पित होने के कारण वस्तुतः नहीं मानतेहैं ॥३८-३९)

अतएव स्थूल एवं सूक्ष्मरूप को भगवन् मायाने सृजन कियाहै, इस स्थूल सूक्ष्म रूपसे अतीत श्रीकृष्णके रूपहै, श्रीगोविन्द वृन्दावन ग्रन्थमें कथितहै—बलरामके प्रश्नपर श्रीकृष्णका उत्तर—परमात्मा, पर—

४२। केचिद् वदन्ति तद्रश्मि ब्रह्म चिद्रूपमव्ययम् ।
तदंशांशं महाविष्णुं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

तथा श्रीकृष्णयामले द्वादशाधिकशततमपटले श्रीवासुदेवं प्रति त्रिपुरोवाच—

४३। सूचनात् सूत्रमित्याहुः कृष्णानुभवसूचकम् ।
ज्योतिर्वृन्दावनात्मकं ख्यातं ब्रह्मेतिजगदुज्ज्वलम् ॥

४४। तद्ब्रह्म कृष्णविगुणं यतो भाति चराचरम् ।
यस्य भासा भाति विश्वं यथार्थं श्रुतयो जगुः ॥

अतएव श्रीकृष्ण पादाब्जलाभेऽपिसर्वंप्राप्तम् । कश्चिदवशेषोऽस्ति नैवम् । यथा—

४५। वृक्षलाभे न वृक्षस्य किञ्चिद् भवतिदुर्लभम् ।
कृष्ण पदाब्जलाभेऽपि दुर्लभंनास्ति किञ्चन ॥

ब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, शब्द ब्रह्ममय साक्षात् स्वयं प्रकृति ईश्वर अनादि-अनन्त स्थूल सूक्ष्मातीत एवं परात्परबस्तुहैं।।४०।।(४)

ब्रह्मोपासनाही श्रेष्ठहै-यह जो कहा गयाहै, उसका समाधानात्मक उत्तर इस प्रकारहै, ब्रह्म क्याहै सुनो । वराह संहितामें वराहदेवका कथनहै–श्रीकृष्णका चरण तल, ध्वज, वज्र, अङ्कुश एवं पद्मादि चिह्न से अङ्कितहै । उनके नखचन्द्र किरण मालासे समुद्भासित ब्रह्मका श्रीकृष्ण मूल कारणहैं । कोइ कोइ चिन्मय अव्यय रस्मिको ही ब्रह्म कहते, व अंशांशको महाविष्णु कहतेहैं । श्रीकृष्ण यामलमें उक्तहै, जगत् उज्ज्वलकारी ज्योतिर्म्मय ब्रह्मवस्तुको पण्डित गण कृष्णानुभवसूचक सूचना सूत्र कहते हैं । अतएव कृष्णकिरण ही ब्रह्महै, उससे विश्व ब्रह्माण्ड प्रकाशित होताहै । श्रुतिगण भी यथार्थ कहतींहै, जिनके आलोकसे विश्व आलोकित होताहै वह ही परतत्त्वहै । (४१–४४)

सुतरां श्रीकृष्ण पादपद्मलाभसे ही सर्ववस्तुका लाभ होताहै,

४६। या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म ।
ध्यानाद् भवज्जनकथा श्रवणेन वा स्यात् ॥
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथमाभूत् ।
किम्वन्तकासिलुलितात् पततां विमानात् ॥

अतो यदि श्रीकृष्ण पदारविन्दं प्राप्तम्, तदा सर्वं प्राप्तमेव, किन्तु श्रीकृष्णपादाम्वुजं विना नान्यत्र सिद्धि र्यथा (भाः१-५-१२) नैष्कर्म्यमप्यच्युत भावबर्जितं, न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् इत्यादि । तथा त्रैलोक्यसन्मोहन तन्त्रे ब्रह्मविद्योपासनीयं श्रीकृष्णपादपद्मं यथा—

४७। ब्रह्मवादी मुनिः कश्चिज्जावालिरिति विश्रुतः ।
सोऽध्यात्मनिरती योगी विचरन् पृथिवीमिमाम् ॥

४८। अपश्यत्तापसीं काञ्चिच्चरन्तीं दारुणंतपः ।
तारुण्यवयसा युक्तां रूपेणाति मनोहराम् ॥

४९। चन्द्रांशुसदृशाभासां सर्वावयवशोभनाम् ।
कृत्वा कटितटे चैव कृष्णाजिन सुकोमलाम् ॥

५०। ज्ञानमुद्राञ्च बिभ्राणामनिमिषायतेक्षणाम् ।
त्यक्ताहारविहारञ्च मुनिर्निश्चलतांस्थिताम् ॥

कुछभी अलभ्य नहीं रहताहै। जैसे वृक्षलाभ होनेपर किसी अंशविशेष(पत्रपुष्पादि)दुर्लभ नहीं होताहै। (भा:४-९-१०)में,हेनाथ ! तुम्हारे पादपद्मध्यान अथवा तदीय भक्तजनको काहिनी सुननेसे जीवको जो परम आनन्द लाभ होताहै, वह ब्रह्मानन्दमें भी नहीं होताहै, तव महाकालसे पतित भोगकारी जीवोंका जो आनन्दलाभ होताही नहींहै, उसके विषयमें कहनेकी आवश्यकताही नहींहै ॥४५-४६॥

सुतरां श्रीकृष्णचरण प्राप्त होनेसे ही सकल वस्तुकी प्राप्ति हुईहै,

५१। जिज्ञासुस्तां मुनिवरस्तस्थौ तत्र शतं समाः ।
ततस्त्वेवं समुत्थाय मुनिना प्रार्थिता च सा ।।

५२। अतोऽहं ज्ञातुमिच्छामि तपसः कारणं तव ।
यदि योग्यं भवेत्तर्हि कृपया वक्तुमर्हसि ।।

५३। अथाब्रवीच्छनै र्बाला तपसा तीव्रकर्शिता ।
ब्रह्मविद्याहमतुला या योगीन्द्रैर्विमृग्यते ।।

५४। जितेन्द्रिया जिताहारा काम्यया दुश्चरं तपः ।
चराम्यहं वने धोरे ध्यायन्ती पुरूषोत्तमम् ।।

५५। ब्रह्मानन्देन पूर्णाहं ज्ञानविज्ञान तृप्तधीः ।
तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरतिं विना ।।

५६। इदानीमतिनिर्विण्णा देहस्यास्य विसर्ज्जनम् ।
कर्त्तुं गच्छामि पुण्यायां वापिकायामिहैव तु ।।

५७। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्यामुनिरत्यन्त विस्मितः ।
पतित्वाचरणे तस्याः कृष्णोपासा विधिं शुभम् ।।

यह कहना होगा, किन्तु श्रीकृष्ण पादपद्म विच्युत होकर अन्य प्रकार सिद्धिकी अवस्था क्या होतीहै, इसको (भाः१-५-१२) कहतेहैं, सर्वोपाधि विनिर्मुक्त ब्रह्मज्ञानभी श्रीकृष्ण भाव शून्य होनेसे शोभित नहीं होताहै, अर्थात् फलदानमें असमर्थ होताहै। त्रैलोक्य सम्मोह तन्त्र में ब्रह्मविद्य नामिका तापसीका विवरणमें श्रीकृष्ण चरणभजन प्रसङ्ग है। जावालि नामक विख्यात ब्रह्मवादीमुनि अध्यात्मविद्यामें रत होकर चित्त संयम कर पृथिवी पर्यटन करते करते एकदिन देखा कि तापसी कठोरतपस्या कररहीहै, वयसमें तरुण देहमें अति मनोरम कान्तिही शोभितहै। ज्योत्स्ना जाल के समान किरणमाला उनके अङ्गसे विराजमानहै सकल अङ्गही सर्व शोभामण्डितहै। अथच उसके कटि तटमें कृष्णसार मृगचर्महै, उससेभी सुकोमल दिखाई पड़ रही है। ज्ञान

५८। पप्रच्छ परम प्रीत स्त्यक्त्वाध्यात्म-विवेचनम् ।
तयोक्तं मन्त्रामादाय जगाम मानसं सरः ॥

५९। स एवं वहुदेहेषु समुपास्य जगत्पतिम् ।
नव कल्पान्तरे जाता गोकुले दिव्यरूपिणी ॥

अतएव श्रीकृष्णपादपद्म सेवनं विना ब्रह्मोपासन किमिति ।

तथा ब्रह्मादिस्तुतिः (भाः१०-२-३२)

६०। येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन
स्त्वय्यस्त भावादविशुद्धवुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः ॥

मुद्रा धारण कर अनिमेष नयनसे अवस्थान कर रहीहै । भोजन वर्जित मौनी व निश्चलहै, उनसे कुछ पुछने केलिए इच्छाहोनेपर ब्रह्मवादी मुनि शतवर्ष वहाँपर रहगए । अनन्तर उनका उत्थान होनेपर एकदिन मुनिने उनसे प्रार्थनाकी, तुम्हारी तपस्याका कारण मैं जानना चाहता हूँ। यदि योग्य हो ती कृपा पूर्वक कहो । उस समय तपसे उनका शरीर कृश ही जानेके कारण उन्हींने धीरे धीरे कहा, मैं अतुलनीय ब्रह्मविद्या हूँ, मुक्तकी योगीन्द्रगण अनुसन्धान करते रहतेहैं, मैं इन्द्रिय व भोजन संयम कर दुस्कर तपस्या को कामनासे पुरुषोत्तमका ध्यान करते करते निविड़ वनमें भ्रमण करती रहतीहैं । मैं ब्रह्मानन्दसे पूर्णहूँ, ज्ञान विज्ञानादिमें परितृप्तहूँ, तथापि कृष्ण रति व्यतीत अपनेको शून्यामानती हुँ। सम्प्रति महानिर्वेद ग्रस्त होकर इस देहको त्याग करनेके लिए पुण्य सरोवरको जा रहीहूँ ।

उनका कथन सुनकर मुनि अतिशय विस्मयान्वित होकर उनके चरणीं को पकड़ कर श्रीकृष्णोपासनाका शुभविधान मुनिने पुछा, अनन्तर आनन्दमनसे अध्यात्मचर्च्चाको छोड़कर ब्रह्मविद्यासे उपदिष्ट

तथा (भा:१०-१४-४)

६१। श्रेयः सृतिं भक्ति मुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलवोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

अतःसर्वविहाय श्रीराधाकान्त चरण सेवनं कर्त्तव्यं नान्यत् शाश्वतमिति शेषः । (५)

अथात्र मुमुक्षवो वदन्ति—श्रीकृष्ण ब्रह्म परः पूर्णानन्द स्वरूपः नित्यो नित्यप्रकाशः लीला विग्रहः । इतियदुक्तं तस्य किं रूपं, किं प्रमाणं, किम्वा गुणः, किमस्य प्रभावः, किम्वा स्थानं तदुच्यतां ॥

मन्त्र ग्रहण कर मानस सरोवरके ओर चलेगये । आपने अनेक जन्म लगा कर जगत् पतिको उपासनाके पश्यात् तत् परवर्त्ती नूतन कल्पमें गोकुलमें दिव्य रूपिनी गोपी होकर जन्म लिया ॥४७-५९॥

अतएव श्रीकृष्ण उपासना व्यतीत ब्रह्मोपासना अतितुच्छहै । श्रीभा:(१०-२-३२) कहतेहैं–हे पद्मपलाशलोचन ! जो सव लोक मुक्त होगया हूँ अभिमान करतेहैं, वे सव तुम्हारे प्रति भक्ति शून्य होने के कारण अशुद्धमतिहैं , वे सव अतिक्लेशसे परमपद ब्रह्म पर्यन्त आरोहण करके भी भगवद् भक्तिको अनादरकर अधःपतित 'संसारमें पतित' होतेहैं, ब्रह्माजी कहतेहैं, हे विभो ! जोसव साधक सर्वविध कल्याणमय भक्ति मार्गको छोड़करके व शुष्क ज्ञानमात्र लाभके लिए क्लेश करतेहैं, तुषावधाती जनके समान उनको आचरित धर्मसे कुछभी फल नहीं होताहै केवल परिश्रमही सार होताहै, अतएव अन्यध्यान,अन्यज्ञान, अन्यदेवपूजा प्रभृति को छोड़कर श्रीराधाकान्त चरणकी सेवाही कर्त्तव्य है, अपर कुछभी नित्य नहींहै ॥६०-६१॥ (५)

ततः श्रीकृष्णचरण परायणा वदन्ति-अहो ! अज्ञाना-देवं वदथ, अस्यानन्तमहिम्नो रूप गुणादोत्वक्तुं के समर्थाः ? यथा (श्रीभाः१०-१४-७) ब्रह्मस्तुतिः—

६२। गुणात्मन स्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै
भूपांशवः खे मिहिका द्युमासः ॥

तथा एकादश स्कन्धमें(४-२)

६३। यो वा अनन्तस्य गुणानन्ताननु क्रमिष्यन् सतु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित्, कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥

यहाँपर मुमुक्षुओं की आपत्ति इसप्रकारहै-तुमने जो कहा, श्री-कृष्ण ही परम ब्रह्म, पूर्णानन्द स्वरूप नित्य नित्य प्रकाश एवं लीला-विग्रहहैं। अब श्रीकृष्णके रूप प्रमाण, गुण, प्रभाव एवं लीलास्थान इत्यादि क्याहै इसको कहो।

अनन्त श्रीकृष्ण चरण परायण व्यक्तिगण कहतेहैं। अहो ! अज्ञानसे ही ऐसा कहतेहो। अनन्त महिमान्वित भूमा पुरुषके रूपगुणा-दि का वर्णन कोन कर सकताहै। श्रीभाः(१०-१४-७) ब्रह्माजी कहते है-भूमिकी रेणु कणा, आकाशके हिमकणा, एवं नक्षत्रादि कीभी गणना की जा सकतीहै, किन्तु जगत् केहितके लिए अवतीर्ण एवं निखिल कल्याण गुणस्वरूप तुम्हारे गुणावलीका कीर्त्तन करने में कोई समर्थ नहींहै, (भाः११-४-२) जोजन अनन्तदेवके अनन्त गुणावलीकी संख्या करना चाहताहै, वह मन्दबुद्धिहै, कालक्रमसे कभी कोई व्यक्ति पृथिवी ही धुलकणा समूहकी गणना कर सकताहै, किन्तु सर्वशक्ति निधान भगवान् के अनन्तगुण समूहकी संख्या किसी प्रकारसे नहीं हो सकती है। (भाः१०-१४-३८) ब्रह्मा कहतेहैं—जो जन कहताहै,मैं कृष्णतत्त्व जानताहूँ। वह जाने, किन्तु मैं अधिक कहना नहीं चाहताहूँ। मैं केवल

तथा (भा:१०-१४-३८)

६४। जानन्त एव जानन्त किंवहूक्तचानमेप्रभो
मनसो वपुषो वाचोवैभवं तव गोचरम् ॥

यत्र ब्रह्मैवं तत्रान्ये के वराकाः ? तस्मिन्नहमपि किं क्षुद्राति क्षुद्रः ? तदेव,

६५। श्रीकृष्णचन्द्र चरणाब्ज गुण प्रवाह,
वक्तुं यथा द्रुहिणविद्रुत वुद्धिशक्तिः ।
तस्मिन्ममाभिलषिता मतिरल्पकस्य,
वालो यथा विधुमभीप्सति खेलनार्थम् ॥

यदवधि ममावगता, तदिति शास्त्रानुसारेणोच्यते तत्रादौ । अर्थर्वोपनिषदि गोपाल तापनीये (पूर्व ३६-३७-४४)

६६। ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्त हेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

६७। नमो विज्ञान रूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

यह कहताहूँ, हे प्रभो ! तुम्हारे अनन्त वैभव–मेरे कायमनो वाक्य के अगोचरहैं । जहाँ ब्रह्मा ही उस विषय वर्णन में असमर्थहैं, तव क्षुद्र जीवकी वातही क्या है ? सुतरां इस विषयमें मैं भी क्या क्षुद्रादि क्षुद्र नहीं हूँ । निश्चय ही ऐसाहूँ, श्रीकृष्णचन्दके चरण पद्मके गुणावलिको वर्णना करने में जव ब्रह्माकी वुद्धि विलुप्त हो जातीहै, तव उस विषय मैं अभिलाप करने पर कहना पड़ेगा कि मेरी मतिभी वालकके चन्द्रके साथ खलनेका अभिप्राय की भांति सुदुर्लभ वस्तु का प्रयास कर रही है ॥६२–६५॥

अतएव मैं यथा मति शास्त्रानुसार कहताहूँ—गोपालतापनी,

६८। निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ।।

तथा ब्रह्मसंहितायां(५-३३) ब्रह्मस्तुतिः ।

६९। अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनञ्च ।
वेदेषु दुर्लभ अदुर्लभमात्मभक्तौ,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।

तथा (भाः१-५-२२) ।

७०। इदं हि पुंस स्तपसः श्रुतस्य वा,
स्विष्टस्य सूक्तस्य च वुद्धदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरुपितो,
यदुत्तमः श्लोकगुणानुवर्णनम् ।।

अतएव श्रीकृष्णचन्द्रचरणभजनमेव कर्त्तव्यमिति नान्यत् ।

विश्वरूप, विश्वस्थिति लयकर्ता, विश्वेश्वर, विश्व(जीवप्रधान शक्ति द्वारा जगत् की आत्मा) गोविन्दको नमस्कार। ब्रह्मनन्दस्वरूप परमानन्दन गोपीनाथ गोविन्दको नमस्कार। निष्कल(पदकधारी) अज्ञान निवर्त्तक, शुद्ध, चित्तमालिन्य दूरकारी, अद्वितीय, महान्, श्रीकृष्ण को नमस्कार।

ब्रह्मसंहितामें (५-३३) जो अद्वितीय, जिनकी शरण लेनेपर कभी पतन नहीं होताहै, अनादि, अनन्तस्वरूप, आदिपुरुष पुरुषोत्तम, अथच नित्ययौवन, वेदके अगोचर होकरभी जो निज भक्ति सुलभहैं। वह आदि पुरुषगोविन्दका मैं भजन करूँ(भाः१-५-२२) उत्तम श्लोक श्रीहरिके गुणानुवर्णन करने सेही पण्डितगण उसको तपस्या, वेदाध्ययन यज्ञ, मन्त्रपाठ, ज्ञान, एवं दान, प्रभृतिका अव्यभिचारी नित्य फल कहे हैं।

७१। दृष्ट्वा श्रुत्वावगम्याथ पुराणादौ तु सर्वतः ।
परमानन्द सन्दोह कृष्णपादाम्बुजंभज ॥

७२। श्रीमत्कृष्णपादारविन्द युगलेभक्तिर्विधेयासदा।
नानोपासनवर्जनाभिधमिदं रत्नं परं मौक्तिकम् ॥
कण्ठस्याभरणं कुरुष्व सततं ह्यन्याभिलाषं त्यज ।
सारं श्रीकविराज राधववचः सानन्दमाकर्णय ॥ (६)

इति श्रीकृष्णभक्तिरत्न प्रकाशे नानोपासनवर्जनं नाम द्वितीयं रत्नम्॥२॥

** तृतीयः प्रकाशः **

१। पूर्णं सर्वपरं बक्ष्ये कृष्णमानन्दविग्रहम् ।
नित्यवृन्दावनासीनं राधिका प्राणवल्लभम् ॥

१। अथ भगवद्भावका वदन्ति–अहो ! यच्छ्री कृष्णस्य गुणानुवादं श्रोतुं प्रश्नं कृतवन्तो भवन्तः, तदेव सर्वोपरि नित्यानन्दमयपरमात्मस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रस्य लीलाविग्रहस्य रूप गुण

अतएव श्रीकृष्णचरण भजनही एकमात्र कर्त्तव्यहै । इसलिए कहताहूँ । पुराणादिमें सर्वत्र देखकर, जानकर शुनकर परमानन्द राशिप्रद श्रीकृष्ण पादकमलका भजन करो। श्रीकृष्णचरणारविन्द युगलमें भक्तिही सर्वदा अभिधेयहै। इसमें प्रकाशित नानावेदधर्मादि की उपासना वर्जन नामक मौक्तिक रत्नको कण्ठाभरण करो । सर्वदा अन्याभिलाष त्याग करो कविराज श्रीराघव पण्डितकी वाणी आनन्द मनसे सुनो । इति द्वितीयरत्न ॥

इस तृतीय प्रकाशमें पूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, सच्चिदानन्दविग्रह, नित्यवृन्दावनवास्तव्य, श्रीराधिका प्राण वल्लभ श्रीकृष्णका विवरण वर्णित होगा ॥१॥

प्रकाशं नानाशास्त्रानुसारेणाहं बिवृणोमि। तदेव सावधानं श्रूयताम्, सम्यग् ब्रह्मादिभिर्नज्ञायते यत्। यथा ब्रह्मसंहिता-याम् (५-१,३४)

२। ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादि र्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

३। पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसंप्रगम्यो।
वायोरथापि मनसो मुनिपुङ्गवानाम्॥
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे,
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

४। कृष्णो यः कथ्यते वेदैः पूर्णः सर्वेश्वरः पुमान्।
स एव निखिलाधारो निर्गुणः प्रकृतेः परः॥

निर्गुणो यथा विष्णुपुराणे (१-६-४३)

५। सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः।
स शुद्धः सर्व सत्त्वेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु॥

श्रीभक्त भावुकगण कहतेहैं अहो! आपने श्रीकृष्णके गुणानुवाद श्रवण करने के विषयमें प्रश्न किया। वह सर्वातिशायी नित्यानन्दमय परमात्म स्वरूप श्रीकृष्णके लीलाविग्रहके रूपविषयमें नाना शास्त्रा-वलम्वनसे किञ्चित् निवेदन कर रहाहूँ। यह तत्त्व ब्रह्मादिभी सम्यक् नहीं जान सकतेहैं, आपसव सावधानसे श्रवण करें। ब्रह्मसंहिता(५-१) में श्रीकृष्ण परमेश्वर, सच्चिदानन्दविग्रह, स्वयं अनादि अथच सवके आदि गोविन्द एवं सर्वकारणके कारणहैं। (५-३४) (महावेगवान्) वायु एवं मुनिवरगणके मन शत कोटि संवत्सर तक निरन्तर दुर्द्धर्ष वेगसे चल कर भी जिनके चरण कमलके अग्रभाग में रहतेहैं, अर्थात् स्पर्श करनेमें सक्षम नहीं होतेहैं, वह अविचिन्त्य तत्त्व आदिपुरुष गोविन्द का भजन करताहूँ। वेदमें पूर्ण सर्वेश्वर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की कथा

तथा पाद्मे (उ;ख ६१-३८)

६। योऽसौ निर्गुण इत्युक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः ।
प्राकृतै र्हेय संयुक्तै र्गुणै र्हेयत्वमुच्यते ।।

अतः प्राकृत गुणैर्वर्जितः लीलया सगुणः । श्रीभागवते रासे(१०-२६-१४) अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः इत्यादि । अथ (भाः१०-१४-२६)

७। अथापि ते देव पदाम्वुजद्वय प्रसादलेशानु गृहीत एवहि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो, न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्

विष्णु पुराणे भगवान् यथा (६-५-७९)

८। ज्ञानशक्तिवलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयै र्गुणादिभिः ।।

उक्तहै, आप निखिलाधार, निर्गुण, एवं प्रकृतिके अगम्यहैं ।

विष्णु पुराणमें उक्तहै-प्राकृत गुण सत्वादि ईश्वर कृष्णमें नहीं है। सर्व सत्त्व(गुण व जोव) से अतिशुद्ध, आप प्रसन्न होवे । पद्म पुराणमें कथितहै-शास्त्रसमूह जिनको निर्गुण कह कर घोषणा करतेहैं, वहही जगदीश्वरहैं ।

अतएव आप प्राकृत गुण वर्जित, लीलाविनोदमें आप सगुण (निखिल कल्याण गुण मण्डित) हैं । श्रीभागवतमें(१०-२६-१४)। आप अव्यय(जन्मादि विकार रहित), अप्रमेय(अद्वितीय-तत्त्व) हैं। निर्गुण, प्राकृत गुण रहित), अथच गुणात्मा(स्वरूप भूत-कल्याण गुणमय अथवा गुणनियत्ता) हैं (१०-१४-२६) । यद्यपि श्रीभगवानकी महिमा अपरिच्छिन्न, दुरधिगम्यहैं) तथापि हे भगवान् ! देव ! तुम्हारे पाद पद्म युगलके प्रसाद लेश से अनुगृहीत जनही केवल तुम्हारी महिमाको अवगतही सकतेहै। तद्व्यतीत अन्य कोईभी व्यक्ति (महाश्रेष्ठ होने परभी) चिरकाल लगाकरभी शास्त्र योगादि मार्गका विचार करने परभी वह जान नहीं सकतेहैं। विष्णु पुराणमें-प्राकृत हेयगुणविहीन

८। अथ यत्र भौत्तिक देहस्तत्र माया, यत्रमाया तत्रगुणाः, यत्र गुणास्तत्र प्रलयोध्रुव एव, एवं भौतिकदेहेदेह देहि भेदो वर्त्तते; अत स एव नश्वरः। ईश्वरस्य श्रीवृन्दावन चन्द्रस्य न भौतिको देहः। यथासम्मोहन तन्त्रे सनक उवाच-

९। तदानन्दमयी राधा तदानन्दमयो हरिः।
न भौतिको देहबन्धस्तयोरानन्दस्वरूपयोः ।।

तथैवेश्वरस्य देहदेहिभेदो नास्ति, यथा कौर्मे—

१०। देह देहि विभेदस्तुनेश्वरेविद्यते क्वचित् ।
अतो लीलामयो देहः कृष्णस्य परमात्मनः ।।

तथा आदि यामले—

११। सर्वेषां नश्वरो देहो देहदेहि विभेदतः।
सर्वात्मकानन्दमये प्रलयः किमु जायते ।।

१२। तथा- सृष्टिं स्थितिश्च प्रलयं यः करोति स ईश्वरः।
तस्मिन् सर्वाणि लीयन्ते स कुत्र परिलीयते ?

होनेपर निखिल ज्ञान; भक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य व तेजः प्रभृतिके निधानही भगवच्छब्द वाच्य होताहै (१)

जहाँ भौतिक देह, वहाँपरही माया, मायारहनेसे ही वहाँ सत्त्वादि गुणत्रयभी रहेगा एवं गुणों का ध्वंसभी निश्चितहै, भौतिक देहमें देहदेहि भेद विद्यमान रहनेके कारण वह नश्वरहै, किन्तु ईश्वर श्रीकृष्णका भौतिक देह नहींहै। सम्मोहन तन्त्रमें सनक कहेहैं कि प्रेमानन्दमयी श्रीराधा एवं प्रेमानन्दमय श्रीहरि, वे दोनों आनन्द स्वरूप होनेके कारण भौतिक देह बन्धन नहींहै। ईश्वर तत्त्वमें देहदेहि नहीं होताहै, इस सन्दर्भमें कूर्म्म पुराण—ईश्वर में कभी भी देहदेहि हो नहीं सकता, अतः परमात्मा श्रीकृष्णका केवल लीलामय विग्रह ही है। आदि यामलमें— सकल जीवके देह देहि भेद हेतु नश्वर देह होतेहैं,

अथ श्रीकृष्णचन्द्रस्य देहो नित्यो न भौतिकः, तस्मिन् देहदेहि भेदो नास्ति, तत्किमिति, तदत्र श्रूयताम्—

१३। उदयते वहिर्योऽसौ स्थुलसूक्ष्मपरः पुमान् ।
लीलया सतनुर्भाति नित्यानन्दः सनातनः ।।

अहो ! यद्येवं तदा कथं प्रकृतिसङ्गः ? नतु तदेव, द्वयोरेकत्वादेक एव, यथा श्रीकृष्णयामले ऊनविंशाधिकशततम पटले स्त्रीरूपमाश्रित्य श्रीभगवता वासुदेवेन दिव्यवृन्दावने राधया श्रीकृष्णो दृष्टोऽभेदेन—

१४। अन्योन्याश्लेषिताङ्गौ तौ राधाकृष्णौ ददर्श सा ।
राधांस्फुरद्रसां कृष्णसर्वाङ्गस्वाङ्गगोपिताम् ।।

१५। चुम्बन्तीं कृष्णचन्द्रस्याधरदिव्यसुधाश्रयाम् ।
कृष्णो राधाङ्गरागेण कुङ्कुमोकृतविग्रहः इत्यादि ।।

किन्तुसर्वात्मक आनन्दमय भगवत्तत्त्वमें प्रलयनश्वरत्व क्या कभी भी हो सकताहै ? एवं जो सृष्टि स्थिति प्रलय कार्य सम्पादन करताहैं, वह ही ईश्वरहैं, प्रलयमें सब वस्तु उनमें लीन होतीहैं, तब ईश्वर कहाँपर लीन होंगे ? अतएब श्रीकृष्णके देह नित्यहै, भौतिक नहीं। उसमें देह देहि भेद नहीं हो सकताहै, उसका कारण सुनो। स्थूल सूक्ष्मातीत यो पुरुष बाहर (ब्रह्माण्ड) में आविर्भुत होताहै बह नित्यानन्द सनातन (नित्य) होकरभी लीलाबिनोदकेलिए देहधारीकी भाँति आत्म प्रकाश करता है

प्रश्न—यदि ऐसा ही हो तव उनका प्रकृति सङ्गव्यापार क्यों ? उत्तर,—ना, कथा इस प्रकार नहींहै, प्रकृति, पुरुष उभयही एकही (अभिन्न) हैं, श्रीकृष्ण यामलमें उक्तहै, स्त्रीविग्रहधारी वासुदेव, दिव्य वृन्दावनमें राधाके साथ अभिन्न भावमें श्रीकृष्णको दर्शन किएहैं। आपने देखा—श्रीराधाकृष्ण परस्पर आलिङ्गित तनुहोकर अवस्थितहैं।

।

तदिति विष्णुधर्मोत्तरे–

१६। सच्चिदानन्दसान्द्रत्वाद् द्वयोरेवाविशेषतः ।
औपचारिक एवात्रभेदोऽयंदेहयोर्द्वयोः ॥

एवं राधाङ्गजाङ्गवत; तदा कथं द्विधारूपः ?

तथा नारद पञ्चरात्रे—

१७। स्वयं हि वहवो भूत्वा रमणार्थं महारसः ।
तयातिरसया रेमे प्रियया चैकरूपया ॥

प्रियया राधया सह । तथा गोविन्दवृन्दावने- अर्द्धाङ्गात राधासमुत्पन्ना'' इत्यग्रे वक्ष्यामि, तत्र व्यक्ती भविष्यति ।

३। अथ कैश्चिदुक्तम्-यदि स्व प्रकाशो लीलारसमयः परमात्म

श्रीकृष्णके सर्वाङ्गमें रसमयी श्रीराधाके सर्वाङ्ग गुप्त हुयेहै, एवं श्रीराधाकृष्णचन्द्रके दिव्य अमृतभाण्डार अधर चुम्बनकर रहीहै । श्रीकृष्णभी श्रीराधाके अङ्गरागसे कुङ्कुमवर्ण हो गयेहैं । उभयही समान भावसे सच्चिदानन्द धन होनेके कारण जो भेद कल्पित होताहै,वह औपचारिकहै(गौण) तव श्रीराधा(प्रकृति) श्रीकृष्णके देहज देहवत् ? शक्ति शक्तिमान् में तत्त्वतः अभेद, शक्ति, शक्तिमानके आत्मभुत अङ्गविशेष है, (कारणस्यात्मभूताशक्तिः, शक्तेश्च आत्मभूतं कार्यम् शंकर भाष्यम्)

सम्प्रति आपत्ति हो सकतीहै कि-यदि पुरुष एवं प्रकृति एकही है तव दो प्रकाश क्यों ? उत्तर नारद पञ्चरात्र देतेहैं, महारस(रसराज) स्वयं (स्वात्मतृप्त) होकरभी रमण करनेके लिए वहुमूर्त्ति होतेहैं, एवं एकरूप अभिन्न मूर्त्तिसे प्रियामहारासमयी श्रीराधाके साथ रमण करते हैं । "स एकोन रमते, अथ द्वितीयमैच्छत्, सह एतावानास यथा स्त्री पुमांसौ संपरिष्वक्तौ वाह्यं किञ्चन न वेद, ना चान्तरम्", वृहदारण्यकमें गोविन्दवृन्दावन ग्रन्थमें कथितहै श्रीकृष्णके अर्द्धाङ्गसे श्रीराधा समुत्पन्न हुईहै । इसका विस्तार आगे करेंगे ।

।

स्वरूप स्तस्मिन् कथं श्यामवर्णत्वं सर्वत्रप्रसिद्धम् ? यथा श्रुतौ- "रूपं न वेद्यं न च विन्दुनादः" इत्यादि, तदाह —

१८। श्यामाभत्वं विधत्ते यत् सर्ववर्णोऽत्र लीयते ।
नित्यं च प्रभवत्येव कालोऽस्मिन्नैव विद्यते ।।

४। अथ कैश्चिदुक्तम्- नित्यत्वं कथमुक्तम् ? महाप्रलयेऽपि सर्वं नश्यत्येव, यथा "न केऽपि स्थातारः सुरगिरि प्रभृतयः" ।

इति वेतान्त प्रमाणम् । तत् प्रत्युत्तरमाह—

१९। मूर्ल्लोकादुर्ध्वतः स्थानं लक्षयोजनमानतः ।
सूर्यस्यैव सुधांशोश्च तदूर्ध्वं लक्षयोजनम् ।।

तद् वशात् कालनियमो न तत्र चकासति । यत्रदिब्य वृन्दावनम्, तत्र चन्द्रसूर्ययोः प्रकाशोनास्ति; यत्र कालो नास्ति, तत्र कथं प्रलयः ? यतः कालनियमात् प्रलयः । यथा गोलोक संहितायाम्—

इस विषय में किसी की आपत्ति है कि, यदि श्रीकृष्ण सबप्रकाश, लीलारसमय, परमात्मारूपहैं, तब क्यों उनका श्यामवर्ण सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ? कारण श्रुति कहतीहै- उनका रूप ज्ञात नहींहै, एवं नाद विन्द सबके अगोचरहै। इसके उत्तरमें कहतेहै- (श्यैगतौ-मक्) श्रीकृष्णकी श्यामवर्णमें प्रसिद्धि का कारण यहहै कि उसमें समस्तवर्ण नित्य लय होतेहैं एवं उससे नित्य अनेकवर्ण उत्पन्न होतेहैं, श्रीकृष्ण समस्तवर्णका समाहार क्षेत्रहैं, उनमें प्राकृत कृष्णवर्ण नहींहैं। कालका भी अधिकार उनमें नहींहै। (३)

कुछ व्यक्ति आपत्ति करतेहैं, श्रीकृष्णका नित्यत्व क्यों कहा ? कारण महाप्रलयमें सबकुछ नाशहो जायेंगे। वेदान्तका प्रमाणहै-महा प्रलयमें सुमेरु देवता पर्वत प्रभृतिका अस्तित्व नहीं रहेगा। उसका उत्तर इस प्रकार है-भूलोक के उर्द्ध में लक्षयोजन परिमित स्थान सूर्य्यमण्डल

२०। पादगम्यन्तु यत्किञ्चित् स भूर्लोक इति स्मृतः।
आसूर्यन्तु भूवर्लोक आध्रुवं स्वर्ग उच्यते ॥

२१। महर्लोकः क्षितेरद्धंमेक कोटिस्तु मानतः।
कोटिद्वयेन विख्यातो जनो लोकस्तु योजने ॥

२२। चतुष्कोटि प्रमाणस्तु तपो लोकस्तु भूतलात्।
उपरिष्टात्ततः सत्यं कोटिरष्टौ प्रमाणतः ॥

२३। सत्यादुपरि वैकुण्ठः कोटिरष्टौ प्रमाणतः।
तस्योपरिष्टात् कौमार उमालोकस्ततः परः ॥

२४। शिवलोकस्तदुपरि गोलोकस्तदुपरिस्मृतः।
ज्योतिर्मयं तत्र ब्रह्म तत्र वृन्दावनं महत् ॥

२५। तत्रैव राधिका देवी सर्वशक्ति नमस्कृता।
तत्रैव भगवान् कृष्णः सर्वदेव शिरोमणिः ॥

तत्र श्रीभगवान् यथा(विः पुः६-५-७८)

२६। आयतिं नियतिञ्चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्या मविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति ॥

का है। उसके उपर लक्षयोजन चन्द्रमण्डलका स्थानहै। सूर्य चन्द्र की गति विधिके द्वाराही कालनियम नियन्त्रित होताहै, दिव्य वृन्दावनमें प्राकृत चन्द्र सूर्यका प्रकाश नहींहै, सुतरां कालनियम भी नहींहै, जहाँ कालनियम नहींहै वहाँ प्रलय नहीं हो सकताहै। गोलोकसंहितामें कथित है, चरण सञ्चारणोपयोगी जो स्थान, उसको भूर्लोक कहा जाताहै, उसके वाद भूवर्लोक सूर्यलोक पर्यन्तहै, ध्रुवलोक पर्यन्त स्वर्गलोकहै, कोटि योजन परिमित महर्लोक, जनलोक दो कोटि योजन, तपोलोक चार कोटि योजन, सत्यलोक आठ कोठि योजन, उसके उपरमें आट कोटि वैकुण्ठ, उसके उपर उमालोक, उसके उपर शिवलोक,सर्वोपरि

अतएव भगवतः कथं प्रलयः ? तच्च श्रीभगवदङ्ग ज्योतिषा सर्वनुद्दीपितम्, तस्मिन् कथं कालः ? अथ वादिनो वदन्ति यदि चन्द्र सूर्य गतिवशान्न कालेनियमोऽभूत्, तत् किं निमेषादिभिः कालं मन्तव्यः तेन प्रलय महाप्रलयादि विधातव्यः। यथा निमेषादिरयं कालस्तदेव,—अमरकोषः (१-१-१७६) २७। अष्टादशनिमेषास्तु काष्ठास्त्रिंशत्तुताः कलाः

तास्तु त्रिंशत् क्षणस्तेतु मुहूर्त्तोद्वादशस्त्रियाम्।। इति तत्र विहस्य भागवता वदन्ति—उदीरितार्थोऽपि भवद्भि र्न ज्ञायते तदेव यत्र च न भौतिकोदेहः, तत्र कथं निमेषो वर्त्तते ? निमेषादिरिति वायोः स्वभावः, अतएव भौतिके देहेनिमेषादिः; यथा पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च इति। वायुर्यथा गोरक्षसंहितायां योग वाशिष्ठे च—

गोलोक विद्यमानहै, उसमें ज्योतिर्मय ब्रह्म एवं महामहीयान् वृन्दावन विराजितहै, उसमें सर्वशक्ति निषेविता देवि राधिका एवं सर्वदेव शिरोमणि भगवान् कृष्ण विराजमानहैं, जीवगणके भाग्य, प्रभाव, उत्पत्ति प्रलय, विद्या एवं अविद्याको जो जानतेहैं वह भगवान हैं।

अतएव भगवानका प्रलय कैसे सम्भव होगा ? पूर्वोक्त सकल धामादि वस्तु भगवानके अङ्गज्योतिसे आलोकित होतेहैं, तव उसधाम में काल प्रभाव कैसे रहेगा। वादीगण कहतेहैं—यदि उसधाममें सूर्य चन्द्र की गतिके कारण कालनियम नहीं है, तव कया निमेषादिके द्वारा काल विभाग सूचित होता है ? यदि वह ही हो तव प्रलय, महाप्रलयादि की सम्भावनाहै कहना होगा निमेषादि पदार्थ कालहै अमर कोषके मतमें अष्टादश निमेषमें एक काष्ठा, तिरीस काष्ठामें एक कला त्रिश कलामें एकक्षण, द्वादशक्षणमें एक मुहूर्त्त, त्रिश मुहूर्त्तमें एकदिन। होता है।

इसके उत्तरमें भागवतगण हँस कर कहतेहैं,—यथार्थ कथा कहने

२८। प्राणोऽपानः समानश्च उदानोव्यान एव च

नाग कूर्मोऽथ क्रकरो देवदत्तोधनञ्जयः। तत्र कूर्मवायो र्निमेषोन्मेषादिगुणः। तथा तत्रैवनागो गृह्नाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमीलति वाशिष्ठे—"निमीलनादि कूर्मस्य क्षुत्तृष्णा क्रकरस्य च" इत्यवं श्रीकृष्णचन्द्रे कालो नास्तीति। यथा गोविन्द वृन्दावने बलरामं प्रति श्रीभागवानुवाच—

२९। प्रेमानन्दमयः शुद्धः सर्वदा नवयौवनः।
कालः कालस्वरूपोऽहं कालात्माकालगोचरः॥

३०। समस्त कालरहितः सर्वकारण कारणम्।
चित्स्वरूपो ज्ञानरूपोऽद्वितीयः समदृक् परः॥

एवं रूपसदैवाहं तिष्ठाम्यत्रैव सर्वदा। अतएव कृष्ण चन्द्रो नित्य महारसमयः समस्तकालरहित इति ज्ञातव्यम्। तिष्ठाम्यत्रैव इति वृन्दावने इत्युक्तम्॥ (४)

परभी आपलोक समझ नहीं पाते। जिस धाममें किसी भौतिक देहका प्रचार नहींहै वहाँ निमेषका प्रसङ्ग केसे होगा? निमेषादिमें वायुका स्वभावहै, वायु प्राकृत देहमें रहताहै, पञ्चभूत पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चविध- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, यहसब क्रम से नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, एवं घनञ्जय नाम प्राप्त होते हैं। कूर्म वायुसे निमेष उन्मेष' नागसे चेतना, होतीहै, इस प्रकार कूर्म वायुकी निमेषादि क्रियाहै। योग वाशिष्ठमें उक्तहै—निर्मीलनादि कूर्मके एवं क्षुधा तृष्णा कृकरके गुणहै। अतएव देखागया कि-श्रीकृष्ण में काल कृत प्रभाव नहींहै। गोविन्द वृन्दावनमें उक्तहै बलराम को कृष्ण जीने कहा—मैं प्रेमानन्दमय शुद्ध, नवयौवन, कालस्वरूप, कालात्मा शव्द ब्रह्म एवं कालगोचर होने परभी समस्त प्राकृत कालरहित सर्व कारणके कारण, चित्स्वरूप,ज्ञानस्वरूप, अद्वितीय, समदृष्टि सम्पन्नहूँ।

५। अथ यथा श्रीभगवान् तथा वृन्दावनमेव , यथापद्मपुराणे निर्वाण खण्डे रहस्याध्याये(पाः खः ४२ अः)श्रीभगवानुवाच–

३१। नित्यं में मथुरां विद्धिवनं वृन्दावनं तथा ।
ममावतारो नित्योऽयमत्र मा संशयं कुथाः ।।

तदत्र वृन्दावनं यथा—

३२। वृन्दावनं च द्विविधं नित्यं दिव्यमितीरितम् ।
नित्यं भुवि तथा दिव्यं सर्वोपरिविराजते ।।

तदेव नित्यवृन्दावनं यथा श्रीकृष्णयामले त्रयोदशाधिक शततमपटले—

३३। नित्यावेदैः प्रगीयन्ते सिद्धिदाः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ।
नित्यवृन्दावनंस्थानं पूर्णाति पूर्णमूच्यते ।।

३४। लीलाः पूर्णातिपूर्णाश्च तुरीयास्तत्र कीर्त्तिताः ।

दिव्य वृन्दावनं यथा–

इस प्रकारमें नित्यकालही इस धाममें विराजित हूँ । अतएव श्रीकृष्ण नित्य, महारसमय समस्त कालातीतहैं, जानना होगा ।।४।।

श्रीभगवत् स्वरूप सम्वन्धमें जोकुछ कहागयाहै, श्रीवृन्दावनके सम्वन्धमें भी वही वात्है, अर्थात् (नित्य, अप्राकृत, सच्चिदानन्दमय, सर्वग, अनन्त विभु प्रभृति) पद्म पुराण में कथितहै-मुझे मथुराको, वृन्दावनको नित्य जानना । मेरा यह अवतारनित्यही है इसमें संशय न करो, वृन्दावनका तत्त्व यहहै– वृन्दावन द्विविधहै– नित्य व दिव्य, नित्य वृन्दावन भूलोकमें, दिव्य वृन्दावन सर्वोपरितन लोकमें है, नित्य वृन्दावन के सन्दर्भमें श्रीकृष्णयामलकी उक्ति इस प्रकार है– नित्य व सिद्धिप्रद लीलास्थानकी कथाकी घोषणा वेदगण उच्च कण्ठसे करते हैं । नित्य वृन्दावनको पूर्णाति पूर्ण कहा जाताहै, उसमें तुरीय पूर्णाति पूर्ण लीलावलि संघटित होती रहती है ।

३५। येन विलासयत्येव श्रीकृष्णं दिव्यनायकम् ।
दिव्यं च यद् यथा देव्याराधाया अङ्गसौभगम् ॥
३६। क्रीड़नीयं परेशस्य दिव्यं तेनैव कथ्यते ।
तुरीयादित्रयं स्थानं दिव्यवृन्दाबनं वयम् ॥
३७। पूर्णातिपूर्णपूर्णं यत्स्वरूपं राधिकापतेः :
यस्यांशांश प्रणिहिता लीलास्तेषु प्रतिष्ठिताः ॥
३८। दिव्यवृन्दावने कृष्णः श्रीराधावल्लभस्तथा ।
गोपिजनवल्लभस्तु नित्यवृन्दावने सदा ॥

वृन्दावनमिति श्रीभगवदङ्गविशेषः, अतः तदेव कालादि रहितम् । अथ यत्र श्रीकृष्णचन्द्र स्तदङ्ग ज्योतिषा वृन्दावनादि समस्तं प्रदीप्तम् । यथा गोलोक संहितायां बलभद्रं प्रति श्रीभगवानाह—

३९। एकोऽनेक स्वरूपोऽहं सर्वशक्तिमयः पुमान् ।
मद् देहान्निर्गतं ज्योतिः सर्वभूतमयंपरम् ॥

तथैव गोविन्द वृन्दावने बलराम प्रश्ने—

दिव्य वृन्दावन-जो धाम दिव्यनायक श्रीकृष्णके विलास सम्पादन कराताहै एवं जो दिव्यलोकमें अवस्थितहै वहही दिव्य वृन्दावनहै । देवी (द्योतमाना, कृष्णक्रीड़ा वसतिनगरी) श्रीराधाको अङ्ग सुषमा जैसे श्रीकृष्णको विलास सामग्रीहै तद्रूप उक्त धामभी उनको क्रीड़ा निकेतनहै, वह तुरीय आदि लोकमें स्थान त्रय(द्वारका, मथुरा, वृन्दावन)में विराजमान होने परभी दिव्य वृन्दावनही सर्वश्रेष्ठहै, कारण इस वृन्दावनमें ही श्रीराधावल्लभका पूर्णाति पूर्ण स्वरूप प्रकाशहै । उक्त राधावल्लभके अशांशके द्वारा समाहित लीलावलि अन्यान्य(द्वारका, मथुरादि)धाममें प्रकटित होतीहैं ।

४०। अन्यत्तु सूर्यचन्द्रादिप्रकाश सदृशं तव।
तनु पादनखाज्ज्योतिः किमिदं तद्वदस्व मे ॥

श्रीभगवानुवाच—

४१। ज्योतिर्ब्रह्ममयं तेजो मच्छरीराद् विनिर्गतम्।
ममानेन न भेदोऽस्ति ब्रह्मज्योति रहंपरम् ॥

४२। पृथिव्यापोवह्निरूपै वायुरूपैस्तथैव च
आकाशरूपैः सदा पश्य जलभाण्डे यथारविः।

४३। दुर्लभं दुर्गमं ज्योति र्दुर्दशं सर्वगं शुचि।
सुखदं मोक्षदं मह्यं पादाङ्गुष्ठाद्विनिर्गतम्
एतद् ध्यात्वा योगिनोऽपि यान्तिनिर्वाणमुत्तमम् ॥
तथा अथर्वोपनिषदि गोपाल तापनीये(उः५५)ब्रह्मणं प्रति

श्रीभगवानुवाच—

४४। चित्स्वरूपं परंज्योतिः स्वरूपं रूपवर्जितम्।
हृदा मां संस्मरन् ब्रह्मन् मत्पदं यातिनिश्चितम् ॥

श्रीगोविन्द वृन्दावनमें श्रीबलराम जीने प्रश्नकिया—चन्द्र सूर्यादि के प्रकाश तुल्य अथच अन्यप्रकाश ज्योति तुम्हारे देह, चरण नख से-विनिःसृत हो रहीहै वह क्याहै ? मुझे कहो। श्रीभगवान्ने उत्तरदिया मेरे देहसे ब्रह्म मय ज्योतिः विनिर्गतहो रहीहैं। वह ब्रह्मज्योति और मैं स्वरूपतः अभिन्नहूँ। मैं परमब्रह्म ब्रह्मज्योतिः हूँ। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश रूपमें सर्वत्र सर्वदा पृथक रूपमें प्रकाशमान् पदार्थ सकल मेरी तेज स्वरूपहैं। सवजीवके अन्तर एवं वाहर सदाकाल आकाशवत् निर्लिप्त जलाशयमें सूर्यवत् प्रतिविम्बित उस ज्योतिको पुनः पुनः देखो। यह ज्योति दुर्लभ, दुर्गम दुर्दर्श, सर्वग, विभु, शुचि पवित्र, सुखद एवं मोक्षदहै। कारण मेरे पदाङ्गुष्ठसे निर्गत हुईहैं। इसका ध्यानसे योगिगण भी उत्तम निर्वाण

अथ वराह संहितायां श्रीवराह उवाच—

४५। तच्छ्यामदेह किरणैः परानन्दरसामृतैः।

तदंश कोटि कोट्यंशा जीवास्तत् किरणात्मकाः॥

एवं श्रीकृष्णचन्द्र-तनु-पाद-नख-ज्योतिषासमुज्ज्वलं वृन्दावनादि समस्त स्थलमिति मन्तव्यम्। तत्र कालादि प्रवेशो नैव,यत्र श्रीकृष्णचन्द्रः स्वप्रकाशो नित्यकिशोरः समस्त कालादि-रहितः। तथाहि गोविन्दवृन्दावने श्रीकृष्णं प्रति वलराम उवाच,—

४६। राधाकान्त जगन्नाथ श्रीमद्गोकुल नागर।

श्यामसुन्दर गोपीश गोकुलानन्द चन्द्रमः॥

४७। वृन्दावनसुखानन्द पीतवासः प्रिय प्रभो।

पादाम्बुज नखज्योतिराप्तलोकत्रय प्रभो॥

अपवर्ग, निर्वृति प्राप्त करतेहैं। गोपाल तापनीमें ब्रह्माको श्रीभगवान् ने कहाहै, चिन्मय, प्राकृत रूपवर्जित,परमज्योतिः स्वरूप मुझे हृदयमें ध्यानकर मानव मेरे धामको प्राप्त कर सकताहैं। वराह संहितामें श्री-वराह देवने कहाहै–श्याम देहकी किरणमाला परानन्दरसामृत स्वरूप हैं, उस किरणके कोटि कोटि भागके एकभागको प्राप्तकर तेजोजीवन (जड़जगत् ब्रह्माण्ड) जीवित रहते हैं।

इससे अवगत होताहै कि श्रीकृष्णचन्द्रमाके देह-चरण-नखरादि की कान्तिसे वृन्दावनादि समस्त स्थान समुज्ज्वल होतेहैं, जहाँपर स्व-प्रकाश नित्यकिशोर समस्त कालादि रहित श्रीकृष्णचन्द्र समुद्भासित हैं उसमें कालादिका प्रवेश ही नहीं हो सकताहैं। श्रीगोविन्द वृन्दावनमें श्रीवलरामने श्रीकृष्णको जिज्ञासा की हे राधाकान्त। जगन्नाथ,गोकुल-नागर, हे श्याममुन्दर,गोपीनाथ, गोकुलचन्द्रमा, वृन्दावन सुखानन्द ! पीतवास ! तुम्हारे चरण कमलकी नखज्योतिसे त्रिभुवन परिव्याप्तहैं,

४८। शब्द ब्रह्ममयी-वंशीप्रिय पद्मदलेक्षण ।
प्रेमभक्ति पुष्पमयी-वनमाला प्रियोत्तम ।।

४९। गोविन्द गोगणार्त्तिघ्न गोपते गोगणार्च्चित ।
यत्त्वया कथितं तत्त्व मात्मनस्तु समासतः ।।

५०। किं स्वरूपोऽसि भगवन् किमीहः किंस्वरूपकः ।
विस्तरेण पुनस्तस्मै श्रोतुमिच्छामि तद्वद् ।।

श्रीभगवानुवाच—

५१। अहमात्मा परं ब्रह्मसच्चिदानन्दविग्रहः ।
शब्द ब्रह्ममयः साक्षात्स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ।।

५२। आद्यन्तरहितः स्थूलातीतः परात्परः ।
स्वयं ज्योतिः स्वयंकर्त्ता स्वयंहर्त्ता स्वयंप्रभुः ।।

५३। कटाक्षमात्र-ब्रह्माण्ड-कोटिसृष्टिविनाशकृत् ।
सदाशिव-महाविष्णु-रुद्र ब्रह्मादि कारकः ।।

हे प्रभो ! तुम शब्दब्रह्ममय वंशीवादन तत्परहो। हे पद्मपलाश लोचन ! प्रेमभक्ति पुष्पमय वनमाला ही तुम्हारीप्रियहैं ! हे गोविन्द ! हे गोगण की आर्त्ति नाशनहो, गोपति (हृषीकेश) गोगणार्चित(सर्वेन्द्रियाराध्य) ! तुमने संक्षेपमें आत्मतत्त्वकी वर्णना कीहै, उसको विस्तारित रूपसे सुननेकी अभिलाषीहूँ ।

श्रीभगवान्ने कहा-मैं आत्मा, परमब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, साक्षात् शब्द ब्रह्ममय, स्वयं प्रकृति व ईश्वर, अनादि, अनन्त, स्थुल सूक्षका अतीत परात्पर तत्त्वहूँ। मैं स्वयंज्योतिः (स्वप्रकाश) स्वयं कर्त्ता, हर्त्ता व प्रभु हूँ। कटाक्ष मात्रसे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड की सृष्टि एवं प्रलय कर सकता हूँ। मैं सदाशिव, महाविष्णु व ब्रह्मरुद्रादि देवगण को सृष्टि करता हूँ। मैं नराकृति(द्विभुज) नित्यरूपी व नित्य वंशीवाद्य प्रिय हूँ। मैं इन्द्रनीलमणिके समान कृष्णवर्ण, त्रिभङ्ग व मधुरा—

५४। नराकृतिनित्यरूपो वंशीवाद्यप्रियः सदा ।
इन्द्रनीलमणिश्यामस्त्रिभङ्गी मधुराकृतिः ।।
५५। पूर्णेन्दुकोटिसदृशो नानालावण्यवारिधिः ।
पुण्डरीकदलाकारनयनः प्रेमसागरः ।।
जितकामधनुर्दिव्यभ्रुलतालीलितोत्सवः ।
५६। त्रिभङ्गललित श्रीमत्तिर्यग्ग्रीवातिसुन्दरः ।
शब्दब्रह्ममयी-वंशीवादनोत्सवसागरः ।।
५७। वनमाली पीतवासाः सुकुञ्चित शिरोरुहः ।
बर्हि बर्ह कृतोत्तंसः पारिजातावतंसकः ।।
५८। प्रेमानन्दमयः शुद्धः सर्वदा नवयौवनः ।
कालः कालस्वरूपोऽहं कालात्माकालगोचरः ।।
५९। समस्त कालरहितः सर्वकारण कारणम् ।
चित्स्वरूपो ज्ञानरूपोऽद्वितीयः समदृक्परः ।
एवं रूपः सदैवाहं तिष्ठाम्यत्रैव सर्वदा ।।

कृति हूँ। कोटि पूर्ण चन्द्र-सदृश, नानाविध लावण्यके सागर हूँ। पद्मपलाशवत् आकर्ण विस्तारि नयन, प्रेमसागर, कामधनुविजयी दिव्य (क्रीड़ा परायण) भ्रुलता के ललित(मनोज्ञ) उत्सव-सम्पादकहूँ।

त्रिभङ्ग अथच परम सुन्दर शोभा सम्पत्तियुक्त वक्रग्रीवासे अति सुन्दर शब्द ब्रह्ममय वेणु नाद द्वारा उत्सव परम्परा की सृष्टिकारीहूँ मैं वनमाली, पीतवसन, कुञ्चित केश कलापीहूँ। मेरा शिरोभूषण मयूर पुच्छ भूषितहै एवं पारिजात कुसुमसे रचित कर्णाभरण है। मैं सर्वदा प्रेमानन्दमय, शुद्ध व नवयोवन सम्पन्नहूँ। मैं कालहूँ, काल-स्वरूप, कालात्मा, कालगोचर अथच समस्त कालरहित एवं सर्वकारण कारणहूँ। चित्स्वरूप, ज्ञानमय, अद्वितीय व समदृष्टि सम्पन्नहूँ। इस

तथा ब्रह्मसंहिताम् ।

६०। अद्वैत मच्युतमनादिमनन्तरूप
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनाढ्यम् ।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ ।
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ।। इति ।

६। अथ सर्वेश्वरत्वम् । श्रीभगवन्निरूपणं यथा ब्रह्मसंहितायां श्रीभगवन्तमालोक्य ब्रह्मा अष्टादशाक्षरमन्त्रं प्राप; तदनु श्री-भगवन्तंस्तौति । यथा श्रीभगवतः समुद्भूय ब्रह्मा सर्वत्रान्ध-कारं दृष्ट्वा भगवन्तं स्तौति, ततो ब्रह्माणं प्रति अष्टादशाक्षर—मदात् । (ब्रः सं: ५-२६-२६)

६१। अथ तेपे स सुचिरं प्रीणन् गोविन्दमव्ययम् ।
श्वेतद्वीप पतिंकृष्णं गोलोकाख्यंपरात्परम् ।।

रीतिसे मैं सदाकाल इस वृन्दावनमें अवस्थान करताहूँ ।

ब्रह्मसंहिता(५-३३)में कथितहै, जो अद्वितीय स्वरूपसे अच्युत, अनादि, अनन्तस्वरूप,आदिभूत,पुराण-पुरुषोत्तम, अथच नित्ययौवन, वेदों के अगोचर अथच भक्ति गोचरहैं, उन आदि पुरुष गोविन्दका मैं भजन करुँ । (५)

अव श्रीकृष्ण का सर्वेश्वरत्व प्रतिपादित होरहाहै । ब्रह्मसंहितामें भगवत्तत्त्व निरूपण कियागयाहै । ब्रह्माने श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्तकर पश्चात् उनके निकटसे अष्टादशाक्षर मन्त्रलाभ किया,अनन्तर उन्होंने श्रीभगवन् को स्तव कियाथा-यथा श्रीभगवानके नाभि कमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माजी सर्वत्र अन्धकार देखकर श्रीभगवानको स्तवकरनेके लिए प्रवृत्तहुये । पश्चात् भगवानने ब्रह्माको अष्टादशाक्षर मन्त्र प्रदान किया । ब्रह्मा अनेक कालतक श्वेतद्वीपपति अव्यय,परात्पर,गोलोकस्थ गोविन्दा-ख्य श्रीकृष्णको प्रीति विधानके लिये तपस्या किएथे । गोलोकके वाहर

६२। प्रकृत्या गुणरूपिण्या रूपिण्या पर्य्युपासितम् ।
सहस्रदल सम्पन्ने कोटि किञ्जल्कबृंहिते ॥

६३। भूमिश्चिन्तामणिस्तत्र कर्णिकारेमहासने ।
समासीनं चिदानन्दं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥

६४। शब्द ब्रह्ममयं वेणुं वादयन्तं मुखाम्बुजे ।
विलासिनी गणावृतं स्वैः स्वैरंशैरभिष्टुतम् ॥

६५। अथवेणुनिनादस्य त्रयी मूर्त्तिमतीगतिः ।
स्फुरन्ती प्रविवेशाशु मुखाब्जानि स्वयम्भुवः ॥

६६। गायत्रीं गायतस्तस्मादधिगत्य सरोजजः ।
संस्कृतश्चादिगुरूणा द्विजतामगमत्ततः ॥

६७। त्रय्या प्रबुद्धोऽथ विधिर्विज्ञात-तत्त्वसागरः ।
तुष्टाव वेदसारेण स्तोत्रेणानेन केशवम् ॥
'चिन्तामणिप्रकर सद्मसु' इत्यादि ।

स्थित मूर्त्तिमती सत्त्वादि गुणमयी भूमिविशिष्ट उस गोलोकमें सहस्त्र दलयुक्त कोटि किञ्जल्क द्वारा परिशोभित कर्णिकारूप महाआसनमें विराजित-चिदानन्दमय ज्योति रूप व नित्यस्वरूप श्रीगोविन्द उपविष्ट होकर वदन कमलमें शब्द ब्रह्ममय वेणुको बजा रहेंहैं, वह निज प्रेयसी वृन्दसे परिवेष्टित एवं आवरणस्थ परिकरगण कर्त्तृक निरन्तर स्तुत हो रहेहैं, अनन्तर वेणुनादसे प्रकटित वेदमाता गायत्री उत्तम रूपसे स्फुरित होकर ब्रह्माके अष्ट कर्णद्वारा मुखकमलमें प्रविष्ट होगई। आदि गुरु श्रीकृष्णके निकटसे मन्त्र प्राप्त एवं संस्कृत होकर ब्रह्मा द्विजत्व प्राप्तकियेथे। अनन्तर ब्रह्मा गायत्री मन्त्रद्वारा प्रबुद्ध होकर सर्वतत्त्व वित् होगये एवं वेदरहस्य पूर्ण यह स्त्रोत्रद्वाराकेशवकी स्तुति कियेथे— जो लक्ष लक्ष कल्पवृक्ष समावृत चिन्तामणि मण्डित मन्दिरावलिमें

तथा नारद पञ्चरात्रे नारदानन्तसंवादे भक्तिरहस्ये-

६८। चिदानन्द स्वरूपञ्च निगुणं प्रकृतेः परम् ।
सुधातोयंलताकल्पलताचिन्तामणिस्थली ॥

६९। ब्रह्मज्योतिः प्रियालक्ष्मीरस्त्रं वेणुः पुमान्हरिः ॥

७०। कथा गानं गतिर्नाट्यं परिखा क्षीरसागरः ।
तल्लोक वासिनं देवं वृन्दावन पुरन्दरम् ॥

७१। दिव्यातिदिव्यं श्रीदेहं कालमायाद्यगोचरम् ।
द्विभुज मेधश्यामाङ्गं किशोरं वनमालिनम् ॥

७२। दिव्याभरण भूषाङ्गं गोपकन्या समावृतम् ।
दयितं प्रेमभक्तानामद्वैतं ब्रह्मवादिनाम् ॥

७३। मीन कूर्म्मादयो यस्य अंशांशाः सर्वदेवताः ।
यस्य स्मरण मात्रेण नरो नारी भवत्यपि ॥

७४। पौराणिका यजन्त्येवं वैतानै ब्रह्मवादिनः ।
भक्तितन्त्रविधानेन त्रिकाण्डेनैव साधवः ॥

अनन्त व्रजलक्ष्मीगण द्वारा सेवितहो रहें हैं। इत्यादि।

श्रीनारद पाञ्चरात्रमें भी कथितहै,-उक्त धाम चिदानन्दस्वरूप, निर्गुण (प्राकृत गुणमुक्त) एवं प्रकृतिके अतीतहैं। वहाँके जलही अमृत है, प्रतिलताही कल्पलताहैं। प्रतिस्थानही चिन्तामणिहैं, ज्योतिमात्र ही ब्रह्म, लक्ष्मीही प्रिया, वेणुही अस्त्र, हरिही एकमात्र पुरुष, कथाही गान, गमनही नृत्य,परिखामात्रही क्षीरसमुद्रहैं,वहाँपर वृन्दावन पुरन्दर क्रीड़ाविनोदी होकर विराजमानहै, आप दिव्य परमसुन्दर विग्रहयुक्त, कालामायातीत, द्विभुज, मेधश्यामलाङ्ग किशोर एवं वनमालीहै, दिव्य आभरणसे व भूषासे भूषित आप भूषित गोपीगणसे वेष्टितहैं। आप प्रेमी भक्तके निकट दयितरूपमें' ब्रह्मवादिगणके निकट अद्वैत ब्रह्मरूप

तथा सम्मोहन तन्त्रे द्वितीय पटलेनारदं प्रति सनक उवाच—

७५। ध्यायेत् कृष्णञ्च सुश्यामं पूर्णानन्द कलेवरम् ।
कोटि सूर्य प्रभञ्चैव योगिनामपि दुर्लभम् ॥

७६। सर्वसौन्दर्य निलयं राधालिङ्गित विग्रहम् ।
पूर्णानन्द स्वरूपं तं न तु भूतमयं हि तत् ॥

७७। यादृशी वेशभूशा च मनसः प्रीतिदायिनी ।
तादृशी च हरे र्ज्ञेया भक्तानुग्राहको हरिः ॥ इति ।

७। अथ श्रुतिभिरवलोकितो यथा वृहद्वामन पुराणे वृन्दावन माहात्म्ये श्रीकृष्णं प्रति श्रुतयः ऊचुः । यथा—

७८। प्राकृते प्रलये प्राप्तेऽव्यक्ते ब्यक्तिं गते पुरा ।
शिलष्टे ब्रह्मणि चिन्मात्रे कालमायातिगेऽक्षरे ।
ब्रह्मानन्दमयो लोको व्यापी वैकुण्ठसंज्ञकः ॥

में प्रतिभात होतेहैं। मत्स्य कूर्म आदि अवतारगण उनकेही अँशंशहैं। उनका स्मरण मात्र से ही नर नारीत्वको प्राप्त करताहै। ब्रह्मबादि पौराणिकगण यज्ञविधानसे एवं साधुगण भक्ति रहस्य मूलक त्रिकाण्ड वेद विधिसे उनकी अच्चर्ना करतेहैं।

सम्मोहन तन्त्रमें नारदको सनक कहतेहैं। सुश्याम पूर्णानन्द-मय कृष्णका ध्यान करें। उनकी कान्ति कोटि सूर्य्यसमहै, आप योगि-गणके दुर्लभ, सर्वसौन्दर्यका आधार, श्रीराधालिङ्गितविग्रह, पूर्णानन्द स्वरूपहैं, कदापि भौतिक नहींहैं। जिस प्रकार वेषभूषा साधकके मनः प्रीतिकरहैं, श्रीहरि उसप्रकारही अङ्गीकार करतेहैं। कारण आप भक्तानुग्रहततूपरहैं ॥६॥

सम्प्रति श्रुतिगणद्वारा दृष्ट श्रीकृष्णसम्बन्धमें बृहद् वामनपुराण में उक्तहैं, (श्रीकृष्णके प्रति वेदोक्ति) प्राचीन कालमें प्राकृत प्रलयके समय प्रकृतिमें समस्त लोक विलीन होकर एकमात्र चिन्मय काल-

७९। निर्गुणोऽनाद्यनन्तश्च वर्त्तते केवलेऽक्षरे ।
अक्षरं परमं ब्रह्मवेदानां स्थान मुत्तमम् ॥

८०। तल्लोक वासि तत्रस्थैः स्तुतोवेदैः परात्परः ।
चिरं स्तुत्त्वा ततस्तुष्टः परोक्षः प्राहतान्गिरा ॥

श्रुतोः प्रति श्रीभगवानुवाच—

८१। तुष्टोऽस्मि ब्रूत भोः प्राज्ञा वरं यन्मनसीप्सितम् ॥

श्रुतयः ऊचुः—

८२। नारायणादिरूपाणिज्ञातान्यस्माभिरच्युत ।
सगुणं ब्रह्म सर्वेदं वस्तु बुद्धि नं तेषु नः ॥

८३। ब्रह्मेति प्रोच्यतेऽस्माभिर्यद्रूपं निर्गुणं परम् ।
वाङ् मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते हि तत् ॥

८४। आनन्द मात्रमिति यद्वदन्तीह पुराविदः ।
तद्रुपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः ॥

मायातीत अक्षर ब्रह्म मिलित होनेपर तब निर्गुण, अनादि, अनन्त, ब्रह्मानन्दमय व्यापक वैकुण्ठलोकही उस अक्षर वस्तुमें वर्त्तमान रहते हैं । उस अक्षर परम ब्रह्म वेदसमूहके आश्रय स्थानहैं, वहाँपर रहकर वेदगण परात्पर भगवान्को स्तव करने लगे । अनेक काल तक स्तव करनेपर उष्ट होकर भगवान् परोक्षरूपसे उनसवको सम्बोधन कर कहेथे.-हे प्राज्ञगण ! मैं तुम्हारी प्रार्थनासे तुष्टहूँ, तुम्हारे अभिवाञ्छित वर की प्रार्थना करो ।

अनन्तर श्रुतियों ने वोली । हे अच्युत । इमसव नारायण स्वरूप को जानतीहूँ यह विश्वब्रह्माण्ड सगुण ब्रह्मरूप इनसवमें हमसव वस्तु वुद्धि नहीं करतीहूँ । इमसव जिनको परब्रह्म कहतीहूँ वह निर्गुणस्वरूप, वाक्यमनके अगोचर इसलिए इमसव उनको नहीं जानसकतीहूँ । किन्तु पुराविद्गण उनको आनन्दस्वरूप कहतेहैं । यदि इमें वर देनेको आप

८५। श्रुत्वैतद् दर्शयामास स्वंलोकं प्रकृतेपरम् ।
केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरमव्ययम् ॥

८६। यत्र वृन्दावनं नाम वनं कामदुघै र्द्रुमैः ।
मनोरम निकुञ्जाढ्यं सर्वतु सुखसंयुतम् ॥

८७। यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्झर दरीयुतः ।
रत्नधातुमयः श्रीमान् सुपक्षिगण सङ्कुलः ॥

८८। यत्र निर्झर पानीया कालिन्दी सरितां वरा ।
रत्न वद्धोभय तटो हंस पद्मादि सङ्कुला ॥

८९। नाना रासरसोन्मत्तं यत्र गोपी कदम्वकम् ।
तत् कदम्वक मध्यस्थः किशोराकृतिरच्युतः ॥

९०। दर्शयित्वेति य प्राह व्रूत किं करवाणि वः :
दृष्टो मदीय लोकोऽयं यतो नास्ति परं वरम् ॥

अतः कृष्णचन्द्रोपरि कोऽपि नास्ति ।

की इच्छाहो, तव उसरूपको प्रदर्शन करो। इस वाक्यको सुनकर भगवान् तव उनसवको प्रकृतिके अतीत निजधामको दिखाया, वह अद्वितीय विज्ञानानन्दस्वरूप, अक्षर, अव्ययहैं, उसमें वाञ्छापूरक वृक्षगण शोभित वृन्दावन नामक वन विराजमानहै, उसमें गिरिराज गोवर्द्धन विद्यमान्है, उसमें अत्युत्तम निर्झर गुहाराजि भीहै। वह रत्न धातु मण्डित, सर्वसौन्दर्यमय, सुन्दर सुन्दर पक्षिगण्में परिव्याप्तहैं। उस धाममें झरणाके जलसे परिपूर्णा नदी श्रेष्ठा कालिन्दी शोभिताहै,उसके तटदय रत्ननिवद्धहै, इस प्रभृति जलचर पक्षिगण एवं पद्मादि पुष्प द्वारा उक्त कालिन्दी सुशोभितहैं। उक्तवृन्दावनमें गोपीगण विविध रासरससे उन्मत्त एवं उसके मण्डल मध्यमें नित्य किशोर श्रीकृष्ण विराजमानहै, इस प्रकार दर्शन कराकर भगवान्ने श्रुतियों को पुछा,- अद्वितीय मदीय लोक यहहीहै, तुमलोकोंने दर्शन किया, अव तुम्हारे

८। सर्वोपरि श्रीकृष्णचन्द्रो यथा श्रीकृष्ण यामले पञ्चाशीतितम पटले श्रीभगवन्तं वासुदेवं प्रति श्रीरुक्मिण्युवाच—

९१। त्वद्दृते नास्ति यत्किञ्चिज्जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
सर्वेषामात्म भूतोऽसि परमात्मेति शब्द्यते ॥

९२। स त्वं किं ध्यायसि श्रीमान्कामिनां सर्वकामदः ।
किं वा जपसि तत्वेन एतत्त्वं वक्तुमर्हसि ॥

९३। निशम्य वाचं कमलेक्षणाया,यदुत्तमो यत् प्रियकृत्प्रियायाः
तामङ्कमारोप्य सुखं च सादरं, मुहुर्मुहुः प्राहमुदामुदान्तहृत् ॥

श्रीभगवान् वासुदेव उवाच—

९४। सारात् सारतरं कान्ते यन्मां पृच्छसि साम्प्रतम् ।
रहस्यानां रहस्यन्तु तथापि वर्णयामि ते ॥

९५। त्वं मे प्राणेश्वरी कान्ता यतः परम शोभना ।
अतो वक्तव्यमेतत् स्यात्त्वयि नास्त्यपि मे रहः ॥

सुखके लिए क्या करणा कहो। अतएव श्रीकृष्ण तत्त्वके उपर अन्य कोई भी वस्तु नहीं हैं ।।७।।

श्रीकृष्ण के सर्वातिशायित्वके सन्दर्भमें श्रीकृष्ण यामल कहतेहैं,- श्रीवासुदेवको श्रीरुक्मिणी,-"हे प्रभो ! तुम्हारी सत्ताको छोड़कर स्थावर जङ्गमात्मक जगतका अस्तित्व ही नहींहै, तुमहि सबके आत्म-स्वरूपहो इसलिये तुम्हें परमात्मा कहा जाताहै, श्रीमान् कामियों के सर्वकाम पूरक तुमभी किसका ध्यान करतेहो किसका जप करतेहो, उसको हमें सत्यरूपसे कहो"। पद्मनयना रुक्मिणीका प्रश्नको सुनकर प्रेयसीके प्रीतिकारी यदुमणि उनको स्वाङ्कमें सुख पूर्वक बैठाकर सादर आनन्दसे मुहुर्मुहु कहने लगे;-

हे कान्ते ! सम्प्रति तुमने जो प्रश्न कियाहै. वह सारात् सारतर; महारहस्यमूलक होने परभी मैं तुम्हें कहता हूँ। तुममेरी प्राणेश्वरीहो,

९६। प्रेमारामं ललित वपुषं यत् कलाक्रान्तमेतत् ।
यं वेदाद्यैं विहित मुनयो नारदाद्या मुनीन्द्राः ॥
प्राहुः सत्यं परमपुरुषं राधिका प्राणरूपं ।
तं गोपीनां नयन कुमुद प्रेक्षणीयेन्दुमीहे ॥

९७। तस्मादुदित प्रोः यस्य विश्वाद्यमाद्यं ।
यद् भागादः सकल जगतां कारणं धीमहि स्म ॥

९८। ज्योतिर्यस्य प्रथमवपुषो विश्वमूर्त्तिर्विराजं
ब्रह्माण्डानां निचयरचना रोमकूपेषु यस्य ।
आवृतास्ते रुचिभिरमल प्रज्ञाया दुर्विगाह्या
सा राधा यं प्रणयविषयं सेवते तं स्मरामि ॥

९९। ब्रह्माण्डानां प्रणयरचना कुक्कुटकीव मूर्ध्नि
यत् शं कालावयवरहितं दिव्यवृन्दावनाख्यम् ।
स्थानं संस्थावरणललितं यत्तुरीयात् परंतत्
प्रेमानन्द प्रथिम मनिशं धीमहि ध्यानहर्षात् ॥

सुशोभना कान्ताभी हो. सुतरां यह रहस्यकथा तुम्हें कहूँगा, तुम्हारे पास मेरा कुछभी गोपनीय नहींहै, जिनके मुरलीके अव्यक्त मधुर निनादसे त्रिभुवन परिव्याप्तहै, जो प्रेमाराम व सुन्दर विग्रहहै ।

नारदादि मुनीन्द्रगण वेदादिको देखकर मौनधारणकर जिनको सत्य व परम पुरुषरूपमें निश्चय कियेहैं, जो राधिका का प्राणवल्लभ गोपियोंके नयन कुमुदके प्रेक्षणीयहै, वह गोकुल चन्द्रमा की वाञ्छा करताहूँ ।

जिनका प्रथम देह सङ्कर्षणकी ज्योतिः स्वरूपमे विश्वमूर्त्ति विराट् पुरुषका आविर्भाव होताहै, जिनके रोमकूप समूहमें ब्रह्माण्डावलिकी रचना हुइहै, जो किरण जालसे आवृत होकरहैं । दुरधिगम्य श्रीराधा विमल बुद्धिसे जिनकी सेवा प्रणयास्पद रूपमें करतीहै उन

१००। वंशी यस्य प्रियसहचरी चिद्रसज्ञा सदैषा ।
कृष्णस्यार्थे यदुदभवना नाद उच्चैः स्वरो यत् ।
शब्दा वर्णाः श्रुतय उदिता वोधयन्तो स्म विश्वं ।
विश्वानन्दं तमहमनिशं प्रेमधाम प्रपद्ये ।।

१०१। यस्य क्रीड़ाकलितवपुषः स्थानसंस्थानसंस्था
ध्यानाशक्तयावयवसहिता नान्यदिच्छामयेषु ।
आत्मानन्दप्रथित जगतां नाककं नान्तमीशं,
तं गोपीनां नयनकुमुदप्रेक्षणीयेन्दुमीहे ।।

इत्येवं राधा प्रेमानन्दमयं परिपूर्ण प्रेमस्वरूपं श्रीकृष्ण चन्द्रमहं चिन्तये ।।८।।

कृष्णचन्द्रका स्मरण करताहूँ ।

ब्रह्माण्डावलीकी रचनामें कुक्कुटी मस्तकस्थ झुंटि की भाँति विद्यमान जो निःशङ्क कालावयव रहित दिव्य वृन्दावन-नामक स्थान है । वह आकृतिमें व वेष्टन आदि द्वारा परमसुन्दर तुरियातीत प्रेमानन्द तुन्दिलहै, इस धामकामें आनन्दितमनसे दिवानिशि ध्यान करताहूँ ।

जहाँपर कृष्णकी प्रीति विधान निमित्त प्रियसहचरी रूपा चिद्रसज्ञा यह वंशीसे उत्थित उच्चस्वर युक्त नाद, शब्द, वर्ण, श्रुति प्रभृति उदित होकर विश्ववासिको निखिल आनन्द वार्त्ता सूचित करते रहतेहैं रात दिन मैं उन प्रेमधामकी शरण ले रहाहूँ ।

जिस लीलाविनोदी भगवानके वासस्थान, लीलास्थली व पार्षद-गणको ध्यानासक्त नित्य विद्यमानरूपमें देखने परभी अन्य विधवासना शून्य लोकगण शून्यही मानतेहैं । आत्मानन्दमें प्रसिद्ध वह जगदीश्वर, स्वर्गानन्दविधायक व अनन्त श्रीगोपीनाथका ध्यान करताहूँ । अतएव राधा प्रेमानन्दमय परिपूर्ण प्रेमस्वरूप श्रीकृष्ण चन्द्रकीमैं चिन्ता करता हूँ ।।८।।

१००। वंशी यस्य प्रियसहचरी चिद्रसज्ञा सदैषा ।
कृष्णस्यार्थे यदुदभवना नाद उच्चैः स्वरो यत् ।
शब्दा वर्णाः श्रुतय उदिता वोधयन्तो स्म विश्वं ।
विश्वानन्दं तमहमनिशं प्रेमधाम प्रपद्ये ॥

१०१। यस्य क्रीड़ाकलितवपुषः स्थानसंस्थानसंस्था
ध्यानाशक्त्यावयवसहिता नान्यदिच्छामयेषु ।
आत्मानन्दप्रथित जगतां नाककं नान्तमीशं,
तं गोपीनां नयनकुसुदप्रेक्षणीयेन्दुमीहे ॥

इत्येवं राधा प्रेमानन्दमयं परिपूर्ण प्रेमस्वरूपं श्रीकृष्ण चन्द्रमहं चिन्तये ॥८॥

कृष्णचन्द्रका स्मरण करताहूँ ।

ब्रह्माण्डावलीकी रचनामें कुक्कुटी मस्तकस्थ झुँटि की भाँति विद्यमान जो निःशङ्क कालावयव रहित दिव्य वृन्दावन-नामक स्थान है। वह आकृतिमें व वेष्टन आदि द्वारा परमसुन्दर तुरियातीत प्रेमानन्द तुन्दिलहै, इस धामकामें आनन्दितमनसे दिवानिशि ध्यान करताहूँ।

जहाँपर कृष्णकी प्रीति विधान निमित्त प्रियसहचरी रूपा चिद्रसज्ञा यह वंशीसे उत्थित उच्चस्वर युक्त नाद, शब्द, वर्ण, श्रुति प्रभृति उदित होकर विश्ववासिको निखिल आनन्द वार्त्ता सूचित करते रहतेहैं रात दिन मैं उन प्रेमधामकी शरण ले रहाहूँ ।

जिस लीलाविनोदी भगवानके वासस्थान, लीलास्थली व पार्षद-गणको ध्यानासक्त नित्य विद्यमानरूपमें देखने परभी अन्य विधवासना शून्य लोकगण शून्यही मानतेहैं। आत्मानन्दमें प्रसिद्ध वह जगदीश्वर, स्वर्गानन्दविधायक व अनन्त श्रीगोपीनाथका ध्यान करताहूँ। अतएव राधा प्रेमानन्दमय परिपूर्ण प्रेमस्वरूप श्रीकृष्ण चन्द्रकीमैं चिन्ता करता हूँ ॥८॥

श्रीभगवानुवाच—

१०८। मामेके प्राकृतं प्राहुः पुरुषञ्च तथेतरे ।
धर्ममेके वरञ्चैके मोक्षमेकेऽकुतोऽभयम् ॥

१०९। शून्य मेकेऽभावमेके परमाणुमथापरे ।
दैवमेके देवमेके ग्रहमेकेमनः परे ॥
बुद्धिमेके कालमेके शिवमेके सदाशिवम् ॥

११०। अपरे वेदशिरसि स्थितमेकं सनातनम् ।
यद्भाव विक्रियाहीनं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥
मन्माया मोहितधियः सर्वकालेनवञ्चिताः ॥

१११। कोऽपि वेद पुमान् लोके मदनुग्रहभाजनम् ।
पश्य त्वं दर्शयिष्यामि स्वरूपं वेदगोपितम् ॥

वेदब्यास उवाच—

११२। ततोऽपश्यमहं भूप ततः कालाम्बुदप्रभम् ।

नर संसार पार हो जाते हैं। तवे मैंने पुलकाञ्चित विग्रह होकर कहा हे कृष्ण ! मैं इस नयनसे ही आपको देखने की इच्छा करता हूँ। उपनिषद् में जो परम सत्य, जगद्योनि, जगद्गति परमब्रह्म रूपमें कीर्त्तित है,–हे नाथ ! उस परतत्त्व ही मेरा नयन गोचर हो।

भगवान् बोले–कोई कोई मुझे प्रकृति व पुरुष कहते हैं, इस प्रकार अपने अपने मतिसे कोई श्रेष्ठ, कोई मोक्ष, अभय, शुन्य, अभाव, परमाणु, दैव, देव, ग्रह, मन, बुद्धि, काल, शिव, सदाशिव, विभिन्न प्रकार कहते हैं। कोई तो उपनिषदुक्त मुख्य, सनातन, भावविकार शून्य एवं सच्चिदानन्दविग्रह मुझे कहते हैं, इस प्रकार मेरी मायासे मुग्ध होकर लोक वञ्चित होतेहैं। किन्तु मेरा अनुग्रहप्राप्त विरल भक्त ही मेरा प्रकृत तत्त्व जान सकते हैं। मैं तुम्हें वेद गोप्य मदीय स्वरूप को दिखा रहाहूँ—दर्शन करो।

गोपकन्या वृतं गोपं हसन्तं गोपवालकैः ॥

११३। कदम्वमूलमासीनं पीतवाससमद्भुतम् ।

वनं वृन्दावनं नाम नवपल्लवमण्डितम् ॥

कोकिलभ्रमरारावं मनोहरमनोहरम् ॥

बालमिति यथा—

११४। कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।

कैशोरमापञ्चदशयौवनन्तु ततःपरम् ॥

वाल्यं यौवनं वार्द्धक्यमिति वयोऽवस्थात्रयम् ।

अथः कैशोरावधि वाल्यम्; एवं वालेऽप्युक्ते किशोरवय इति वोद्धव्यम् । किमभिप्रायस्तदाह– गोपकन्यावृतमिति पदेन कैशोरवयः सूचितमिति । तथा वाल्ये गोपकन्या वृतत्वेन उज्ज्वलरस इत्ययोग्यत्वात्, तथा श्रीकृष्ण यामले ऊनविंशाधिकशत पटले द्वारकानाथः श्रीवासुदेवोऽपि राधा-कृष्णं द्रष्टुं श्रीत्रिपुरा-सहायेन सत्रिपुरो दिव्य वृन्दावने राधा-

श्रीवेदव्यास वोले-अनन्तर मैंने नीलजलदाभ, गोपिगणवेष्टित गोपिवालकगणके साथ हास्यरत गोपकिशोर को देखा। आप कदम्व वृक्षके मूलदेश में अवस्थित हैं, परिधान में अद्भुत पीत वसनहै। देखा, नवपल्लव से भूषित श्रीवृन्दावनहै, उसमें कोकिल भ्रमरगण गुञ्जन कर रहें हैं, जिससे सवके मनोमोहन श्रीकृष्ण काभी मन मोहित हो रहा है।

वालशव्दका विबरण देतेहें–पाँच वत्सर पर्यन्त कौमार काल, दश वत्सर यावत् पौगण्ड, पन्द्रर वर्ष पर्यन्त कैशोर एवं तत् पश्चात् यौवन कालहै। वाल्य, यौवन व वार्द्धक्य वयःक्रम की तीन अवस्था हैं अतएव कैशोर काल तक 'वाल्य' कहा जाताहै। अत वालक कहने

कृष्णान्तिकं विवेश। श्रीकृष्णाज्ञाया राधाकुण्डे स्नात्वा स्त्रीरूपो भूत्वाश्यामा इति नाम धृत्वा परिपूर्ण प्रेममयं राधा कृष्णं सा श्यामा ददर्श। तद् यथा—

११५। मधुप्रिया नाम सखी राधाकृष्णातिवल्लभा।
सा श्यामाञ्च करे धृत्वा राधायाः सम्मुखेऽनयत्॥

११६। सापश्यद् राधिकां कृष्णवक्षःस्थल समाश्रिताम्।
अनौपम्यरूपलीला प्रत्यङ्गरमसोज्ज्वलाम्॥

११७। अन्योन्य श्लेषिताङ्गौ तौराधाकृष्णौददर्श सा।
राधां स्फुरद्रसां कृष्णसर्वाङ्ग स्वाङ्गगोपिताम्॥

११८। चुम्बन्तीं कृष्णचन्द्रस्याधरदिव्यसुधाश्रयाम्।
कृष्णो राधाङ्गरागेण कुङ्कुमीकृत विग्रहः॥

११९। उभयोरन्तरं तञ्च आस्वाद्यास्वादनै रसैः।
अन्योन्यभाव सम्भारैरन्योन्याश्लिष्टचेतसोः॥

किशोर वयस की सूचनाहोती है। वाल्यकाल में गोपकन्या वेष्टित होनेपरभी उज्ज्वल रस सूचित होताहै, किन्तु बालक शब्द का यथा श्रुत अर्थ करने पर रसाभास होगा। इस विषय में श्रीकृष्ण यामल की कथा इस प्रकार है—द्वारकानाथ वासुदेव श्रीराधाकृष्ण के दर्शन को आशासे त्रिपुरा सुन्दरी की सहायता से उनको साथ लेकर दिव्य वृन्दावनमें श्रीराधाकृष्ण के समीप में उपस्थित हुये। तब आप श्री-कृष्ण के आदेश से श्रीराधाकुण्ड में स्नान कर स्त्रीदेह लाभ कर 'श्यामा' नाम धारण कर परिपूर्ण प्रेममय श्रीराधाकृष्ण को दर्शन किये थे। उस समय श्रीराधाकृष्ण को अतिप्रिया 'मधुप्रिया' नामि का सखी उस श्यामा सखी के हात पकड़ कर श्रीराधाके सम्मुख में लेगई, उस समय उन्दोंने देखा, श्रीराधिका श्रीकृष्ण वक्षःस्थल में

इत्येवं नित्यानन्दस्वरूपो नित्यविग्रहः श्रीराधाकृष्ण इति मन्तव्यम्। यथा वराह संहितायां (२-७३-८०)पृथिवीं प्रति श्रीभगवान् वराह उवाच—

१२०। तदंशु कोटि कोट्यंशास्तस्य कन्दर्पविग्रहाः।
जगन्मोहं प्रकुर्वन्ति तदण्डान्तरसंहिताः॥

१२१। तत् प्रकाशस्य कोट्यंशारश्मयः सूर्यविग्रहाः।
तद्देह विलसत् कान्ति कोटिकोट्यंशचन्द्रमाः॥
तच्छ्यामदेहकिरणैः परानन्दरसामृतैः

१२२। परात्मनित्यचिद्रूपा निर्गुणस्यैक कारणम्।
तदंशु कोटि कोट्यंशा जीवास्तत् किरणात्मकाः॥

१२३। तदङ्घ्रि पङ्कज श्रीमन्नखचन्द्र मणिप्रभम्।
तदंशु पूर्णब्रह्मैव कारणं वेद दुर्गमम्॥

विराजिता निरुपम रूप लीलाकी अवधि एवं प्रति अङ्ग प्रेमानन्द से उज्ज्वल है। आपने देखा श्रीराधाकृष्ण परस्पर आलिङ्गित होकर हैं, श्रीकृष्ण के सर्वाङ्ग में रहमयी राधा के निजाङ्ग गोपित है एवं श्रीकृष्णचन्द्र के अधर रूप दिव्य सुधा भाण्डार को चुम्बन कर रही है, कृष्ण भी श्रीराधा के अङ्गराग से कुङ्कुम वर्ण रञ्जित हुये हैं। परस्पर आलिङ्गित चित्त युगल किशोर के अन्तः करण (स्वरूप) अन्यत्र दुर्लभ भाव सामग्रीसे एवं परस्पर के आस्वाद्य आस्वादक रस के सञ्चार से अतिमनोहर हुये हैं।

अतएव श्रीराधाकृष्ण नित्यानन्द स्वरूप, नित्य विग्रह है, ऐसा मानना आवश्यक है, वराह संहिता में श्रीवराहदेवने पृथिवी को कहा है-उनके किरण के कोटि कोटि अंशसे कन्दर्प विग्रह समूह ब्रह्माण्ड मध्यस्थ होकर जगत् को मोहित करते है, उनके प्रकाश के कोटि कोटि अंश में चन्द्रमाहे, उस श्यामाङ्ग की किरणावलि परानन्द रस

१२४। तदङ्ग सौरभानन्त कोट्यंशा विश्वमोहनाः ।
तत्स्पर्श पुष्प गन्धादि नाना सौरभसन्तमम् ।।
१२५। तत्प्रिया प्रकृति स्त्वाद्या राधिका तस्यवल्लभा ।
तत् कलाकोटि कोट्यंशो दुर्गाद्यात्रिगुणात्मिकाः ।
तस्याङ्घ्रिरजसः श्पर्शात् कोटि विष्णुः प्रजापते ।।

तत्र श्रीराधाकृष्णस्यावरणस्वरूपो विष्णुर्यथ । श्रीवराह संहितायां (२-१५७-१६१) श्रीराधाकृष्णस्य सप्तमावरणमाह—

१२६। तद्वाह्ये तु प्रवालादि प्राचीरैः सुमनोहरैः ।
पुष्पोद्यानश्च नानाभिश्चतुर्दिक्षु समुज्ज्वलैः ।।
१२७। शुक्लं चतुर्भुजं विष्णु पश्चिमे द्वारपालकम् ।
शंखचक्रगदापद्म किरीटादि विभूषितम् ।।

सुधामय, परमात्म स्वरूप नित्य वे चिन्मय एवं निर्गुण ब्रह्मका आदि कारण है। उस किरण के कोटि कोटि भाग को प्राप्त कर किरणमय (ग्रहनक्षत्रादि) ज्योतिष्क मण्डली अवस्थान करती है। उनके किरण मय ब्रह्म ही वेद दुर्गम्य जगत् कारण है। उनके अङ्गसौरभ के कोटि कोटि अंशसे हो विश्व मोहन होताहै। उनका स्पर्श प्राप्त कर पुष्प गन्धादि विविध सौरभराशि मण्डित होते हैं। उनकी प्रिया प्रकृति सर्वश्रेष्टा। राधिका ही उनकी वल्लभा है। इन श्रीराधा की कला के कोटि कोटि अंशसे दुर्गादि त्रिगुणात्मिका देविगण उद्भूत होता हैं एवं श्रीकृष्ण के चरणरजः स्पर्श लाभ कर कोटि विष्णु आविभुत होते हैं।

श्रीराधाकृष्ण के आवरण देवतामध्यमें विष्णुकी गणना के सम्वन्ध में वरहसंहिता का संवादहै, सप्तमावरण के वाहर नानावर्ण समुज्ज्वल चतुर्दिक में अति मनोहर प्रवालादि प्राचीर द्वारा वेष्टित

१२८। रक्तं चतुर्भुजं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
किरीटकुण्डलाद्यैश्च शोभितं वनमालिनम् ॥
१२९। गौरं चतुर्भुजं विष्णुं शङ्खचक्राम्बुजायुधम् ।
किरीट कुण्डलाद्यैश्च शोभितंवनमालिनम् ॥
१३०। पूर्वद्वारे द्वारपालं गौरं विष्णुं प्रकीर्त्तितम् ।
कृष्णवर्णं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रादि भूषितम् ।
दक्षिण द्वारपालञ्च श्रीविष्णुं कृष्णवर्णकम् ॥

अथ दुर्गाद्या यास्तदेव श्रूयताम्, नारद पञ्चरात्रे श्रुतिं विजयोवाच—

१३१। अतो दुर्गा मम मता प्रकृति परमात्मनः
प्रेम कौतुकजौत्कण्ठा रक्ताङ्गी व्यक्ततांगता ।

श्रीकृष्ण यामले द्वादशाधिकशततमपटले श्रीवासुदेवं प्रति श्रीभगवती त्रिपुरोवाच—

१३२। राधारस प्रवचनैः कृष्णस्यापि तथाविधैः ।
प्रणयातिरसाविष्टौ राधाकृष्णौनिरन्तरौ ॥

पुष्पोद्यान है, उसके पश्चिम दिक् में शुक्लवर्ण चतुर्भुज विष्णु द्वार पाल हैं, आप शङ्खचक्रगदाधारी व किरीटादि भूषित है। उत्तर दिक् में रक्तवर्ण चतुर्भुज शङ्खचक्रगदापद्मधारी किरीट कुण्डल दीप्त द्वारपाल हैं। पूर्वद्वार में गौरवर्ण चतुर्भुज शङ्खचक्रगदापद्मधारी, किरीट कुण्डलादि शोभित वनमाली द्वारपाल हैं। दक्षिण द्वार में कृष्णवर्ण चतुर्भुज शङ्खचक्रादिधारी द्वार पाल विष्णु हैं।

सम्प्रति दुर्गादि के आवरण के विषयमें नारद पांचरात्र में श्रुतिको विजयाने कही है—दुर्गा को परमात्मा की प्रकृति जानना। प्रेमकौतुक उत्कण्ठासे आप रक्तवर्णा होकर प्रकट हुये हैं। श्रीकृष्ण

१३३। उभयोरेव सम्पत्तिः पश्यतामेव यद्भवेत् ।
प्रेमानुभूतिविभवो महानन्दप्रियम्बदः ॥

१३४। ततोऽन्यत्र च जानामि क्वचिद्वस्त्वस्तिकिञ्चन ।
अतोदासीत्वमनयोः स्वीकृत्याहं सदानुगा ॥

१३५। एतज्जगत् कारणमप्यनादि,
ब्रह्म प्रयत्नंपरितोऽन्ववेहि ।
वेदैरशेषैरूपदिष्टमेतत्
कृष्णस्य दास्यं रहसि प्रशस्यम् ॥

१३६। त्रैलोक्यनाथादि नृणां यथावत् ।
ते मां प्रपद्याभिमतं प्रयान्ती ॥ इत्यादि ।

१३७। एको नित्य किशोर एवमनिशं वृन्दावनाभ्यन्तरे ।
राधाश्लेषपरायणो नवधनश्यामः स वंशीमुखः ॥
नित्यश्च द्विभुजस्तदङ्घ्रि भजनंरत्नंसुनीलाभिधं
भालोर्ध्वं कुरु भूषणं सुविनयं यद्राधवेणोदितम् ॥

इति श्रीश्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाशे श्रीकृष्णपरमपूर्णत्व निरूपणं नाम तृतीयं रत्नम् ॥३॥

यामल में श्रीवासदेव को त्रिपुरा कही है- राधाकृष्ण परस्पर रस चातुर्य मय वाक्य विन्यास से निरन्तर प्रणय रसाविष्ट हुये हैं, प्रेमानुभव एवं महानन्द कर प्रिय भाषणादि उभय की जो सम्पत्ति है वह युगल दर्शन कारी सखियों की प्राप्य है। यह छोड़कर अन्यत्र कोई वस्तु है,-मैं नही जानती हूँ। अतएव मैं युगलकिशोर के दासीत्व अङ्गीकार कर सदाकाल अनुवर्त्तिनी होकर हूँ अथ जगत् कारण अनादि ब्रह्म, सर्वतोभावेन इनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करो। निखिल वेद इनका भजन तत्व उपदेश करते हैं, श्रीकृष्णदास्य ही वैकुण्ठनाथ से लेकर

✲✲ चतुर्थः प्रकाशः ✲✲

१। तदत्रनित्यो निरन्तर स्वप्रकाशोनित्यविभवःपरिपूर्णानन्दमयः समस्त कालातीत इत्यादि ।

१। अथ प्रवक्ष्ये सर्वेशं श्रीकृष्णंनन्दनन्दनं ।
परमानन्दसन्दोहं वृन्दावनविनोदनम् ॥

अथ परिपूर्णानन्दो नित्यप्रकाशः श्रीकृष्णचन्द्रो यदीरितस्तदेव ज्ञातम्, श्रीमन्नन्दनन्दनः क एष इति सन्देहः । यथा आदियामले—

२। कृष्णोऽन्यो यदुसम्भूतो यः पूर्णः सोऽस्त्यतः परः ।
वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति ॥

३। सर्वदा द्विभुजः सोऽपि न कदाचिच्चतुर्भुजः ॥

इत्येवं यदुवंश सम्भूतः कृष्णः क इत्युच्यताम् ?

तस्मिन् भागवता वदन्ति यः पूर्वः प्रसिद्धः श्रीकृष्णचन्द्रः स एव नन्दनन्दन इत्यसन्देहः । यथा ब्रह्माह-(भाः१०-१-२३)

सामान्य मानव पर्यन्त सकल के लिए ही तत्त्वतः प्रशंसनीय वस्तु है। इसरूप में एकमात्र नित्य कैशोर नवघनश्याम वंशीवदन द्विभुजकृष्ण वृन्दावनमध्य में श्रीराधिका को आलिङ्गन कर विराजमान हैं। श्रीराघव पण्डित द्वारा सविनय से उक्त यह उनके पादपद्म भजनरूप सुनीलरत्न को ललाट के उर्द्धभाग का भूषण करो ॥६॥

॥ इति तृतीयरत्न ३ ॥

यह निश्चय हुआ है कि श्रीकृष्ण नित्य, स्वप्रकाश, नित्य वैभव परिपूर्णानन्दमय व समस्त कालातीत हैं इत्यादि । अब सर्वेश्वर, परमानन्द कन्दलमय, वृन्दावन विनोदि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के सन्दर्भ में आलोचनाकरेंगे । आपत्ति यह है कि परिपूर्णानन्द नित्य प्रकाश श्री-

४। वसुदेव गृहेसाक्षात् भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तुसुरस्त्रियः॥

तथा रासे—(भाः १०-२९-१४)

५। नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतोनृप।
अव्ययस्याप्रेमयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

तथा—(भाः १०-३३-३६)

६। अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः
भजते तोदृशीःक्रीड़ा याः-श्रुत्वा तत्परो भवेदिति॥

अतो यः पूर्णः पूर्णतमः स एव नन्दकिशोर इत्यसन्देहः।

यथा श्रीभागवते–(१-३-२८)

७। एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।

तथा ब्रह्मसंहितायाम् (५-३९)

८। कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

कृष्ण है यह उक्त वाक्य से जाना। किन्तु यह नन्दनन्दन कौन है? इस विषय में सन्देह है। कयों कि आदि यामल में वर्णित है–यदु-वंशीय कृष्ण अन्य है, जो पूर्ण है वह यह यदुवंशीय कृष्ण से भी पर तर है, वह कभी वृन्दावन को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता है। वह सर्वदा द्विभुज है, कदाच्र चतुर्भुज नहीं है इत्यादि। अव्र यदुवंश्य कृष्ण कोन हैं? कहो। उत्तर में भागवतगण कहते हैं जो पूर्ण व प्रसिद्ध कृष्णचन्द्र वह ही नन्दनन्दन हैं, इस विषय में कोई सन्देह नही है। प्रमाण (भाः १-१-२३) ब्रह्मादि देव स्तुति में स्वयं भगवान् परम पुरुष रत्न वसुदेव के घरमें आविर्भूत होंगे, अतएव उनकी प्रीति विधान हेतु देवीगण गोपीदेह होकर गोकुल में आविर्भूत हो जायें। (१०-२९-१४) में रास में कथित है, हे राजन्! अव्यय,

तथा ब्रह्मवैवर्त्ते द्वितीयाध्याये नारदं प्रति ब्रह्मोवाच—

९। शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि चरितं परमाद्भूतम् ।
योगेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तानुग्रहकारिणः ॥

१०। सतां निःश्रेयसार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च ।
व्यक्ति र्भगवतस्तस्य नित्यस्य परमात्मनः

११। वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यां स जनिष्यति ॥ इति

२। अथैतत् श्रुत्वा वादिनो वदन्ति—अहो महदाश्चर्यं, य एव नित्य वृन्दावनस्थः स्वप्रकाशो नित्यानन्दो नित्य पूर्णो निरीहस्तस्य जन्म इति किम् ? तत्र भागवता वदन्ति—स्वप्रका-

अप्रमेय, निर्गुण, गुणनिधान होने परभी भगवान् का आविर्भाव केवल मात्र मानवगणके मङ्गलहेतु है। (१०-३३) भक्तगणके प्रति अनुग्रह वश होकर मनुष्य देह में अवशीर्ण होकर एवम्विध लीला प्रकट करते हैं जिस के श्रवण से मानव हरिपरायण हो सकेगें। अतएव जो पूर्ण पूर्णतम, वहही श्रीनन्दकिशोर है-यह ही निःसन्देह से निर्द्धारित हुआ।

भा: (१-३-२८) मत्स्य कूर्मादि अवतारगण भगवान् के अंश व कला प्रभृति है किन्तु सर्वशक्तिमत्ताहेतु श्रीकृष्णही स्वयं (अनन्यापेक्ष) भगवान्। ब्रह्म संहिता के (५:३९) में जो परम पुरुष श्रीरामादि मूर्त्ति में कलादि नियमसे शक्ति प्रकटन करते हैं, अथच अवतार काल में स्वयं ही प्रकटित होते हैं—उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

ब्रह्म वैवर्त्त में नारद को ब्रह्माजी कहे हैं—हे पुत्र ! सुनो — भक्तानुग्रहकारी योगेश्वर श्रीकृष्ण के परमाद्भुत चरित्र का कीर्त्तन करूँगा। वह भगवान् नित्य अज परमात्मा होने परभी किन्तु साधुगण का परम मङ्गल विधान, एवं दुष्टगण को निग्रह करने के लिए धरातल में प्रकट होते हैं, वह वसुदेव की भार्यादेवकी से आविर्भूत होंगे ॥१॥

शस्य जन्मावतारासम्भव इतियदुक्तम्, तत् सत्यम्, किन्तु लौकिक व्यवहारत्वात् जन्मवाच्यम्, नतु सत्यम्, स्वप्रकाश-त्वात्; यथानन्दयशोदाश्च प्रति मदुद्धववाक्यम् (भा:१०-४६-३८-४०)

१२। न माता पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहोजन्म एव वा ।।

१३। न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीड़ार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ।।

१४। सत्त्वं रजस्तम इति भजतेनिर्गुणो गुणान् ।
क्रीड़न्नतीतोऽपि गुणैः सृजत्यवतिहन्त्यजः ।। इति

इसबात् को सुनकर वादिगण आपत्ति करते हैं, अहो ! महा आश्चर्य की कथाहैं। जो नित्य वृन्दावनस्थ, स्वप्रकाश, नित्यानन्द नित्य पूर्ण व निरीह है उनका भी जन्म ? यह कैसे सम्भव है ? इसके उत्तर में भक्तगण कहते हैं, स्वप्रकाश के जन्म अवतारादि असम्भव है, यह वात सत्य है, किन्तु लौकिक व्यवहार के और दृष्टि देकर कहाजाता है कि श्रीभगवान् का भी जन्म होता है, स्वप्रकाश वस्तुका जन्म सत्य नहीं है। प्रमाण (भा: १०-४६) श्रीनन्दयशोदा को उद्धव कहे थे; उनका माता, पिता, स्त्री, पुत्र, आत्मीय, व द्वेष्य कोई भी नहीं है। उनका प्राकृत देह व जन्म भी नहीं है। उनका कर्म नहीं है, तथापि (जन्म कर्मदिरहित होने परभी) स्वीय लीला-विनोदहेतु साधुयों के परित्राण के लिए इस जगत में आप देव, तिर्यक् एवं मनुष्य रूपमें आविर्भूत होते हैं। अज व निर्गुण होकर भी केवल क्रीड़ाके लिए सत्व, रजः, तमः, ये गुणत्रय को स्वीकार कर क्रीड़ा-तीत होकर भी सान्निध्य में आकर गुण गण द्वारा विश्व का सृजन, पालन, व विनाश करते हैं ।।२।।

३। अथावतार कारणमुच्यते, यथा वृहद् वामनपुराणे-वृन्दावनरजोमाहात्म्ये तदेव श्रुति प्रार्थितमवधार्य्य तासां स्तुति वशो भूत्वा सदयस्ताभ्यः सन्दर्शनं ददौ, तत् श्रुतयऊचुः-

१५। कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः।
कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्यसंशयः॥

१६। यथात्वल्लोक वासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः।
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनिनस्तथा॥

श्रीभगवानुवाच—

१७। दुर्लभोदुर्घटश्चैव युष्माकं सुमनोरथः।
मयानुमोदितः सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति॥

१८। आगामिनि विरिञ्चौ तु याते सृष्ट्यर्थमुद्यते।
कल्पं सारस्वतं प्राप्य ब्रजोगोप्योभविष्यथ॥

१९। पृथिव्यां भारते क्षेत्रे माथुरे मम मण्डले।
वृन्दावने भविष्यामि प्रेयान् वो रासमण्डले॥

२०। जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढ़ं सर्वतोऽधिकम्।
मयि संप्राप्य सर्वेऽपिकृतकृत्याभविष्यथ॥

अवतार ग्रहण करने का हेतु को कहते हैं। वृहद् वामन पुराण में, वृन्दावनीय रजोमाहात्म वर्णन प्रस्ताव में श्रुति प्रार्थना अवगत होकर उनसव कीस्तुति से तुष्ट होकर कृपापूर्वक उनसव को श्रीकृष्ण दर्शन प्रदान किये थे। श्रुतियों ने कहीं हे कृष्ण ! कन्दर्प कोटि लावण्य विजयी तुम्हें देख कर कामिनी भाव विभावित मति होकर हमसव काम मोहित होगई हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है, गोकुल गोपीगण जिस प्रकार रमण बुद्धि से कामतत्त्व से भजन करतीं हैं, हमसव भी तुम्हें उस प्रकार प्राप्त करने की अभिलाषिणी हूँ।

एवं श्रुतोनामभिमतसिद्धयर्थं वृन्दावने स्वप्रकाश स्तदत्र प्रमाणमधिगम्यताम् (भाः१०-३२-१३) तद् दर्शनाह्लाद--विधूतहृद्रुजो, मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः इति । तदेव श्रुतयो गोप्यो भूत्वा श्रीकृष्णचन्द्रं प्रापुः । तत्रगोप्योयथा-अङ्गजानित्याः श्रुतिरूपा देवकन्या इति । पञ्चधा, अतः स एव श्रीकृष्णचन्द्रः स्वप्रकाशः, नतु गर्भवासः । तत्र वादिनो वदन्ति-यदिगर्भसम्भवोनैव, तदा कथम् (भाः१०-१-२३)

२१। वसुदेव गृहे साक्षात् भगवान् पुरुषःपरः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्त्वमरस्त्रियः ।। इति ।
वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यां स जनिष्यति ।। इति
ब्रह्मवैवर्त्ते पाठः ? अतः सन्देहः । तदत्र श्रूयताम्-

श्रीभगवान् वोले, तुम सवके मनोरथ सुन्दर होने परभी दुर्लभ व दुर्घट है, मेरा अनुमोदन से वह भी सत्य होगा। सृष्टि कार्थ के लिए उन्मुख आगामी ब्रह्मा के सारस्वत कल्प में तुम सव व्रजमें गोपी कुल में आविर्भूत होऊगी । पृथिवी में भारतवर्ष में मथुरा मण्डलस्थ वृन्दावनीय रासमण्डलमें में तुम्हारे प्रेयान् वनूंगा एवं मेरे प्रति तुम सव को अधिककर जारधर्मसे प्रीति होगी, उसको प्राप्तकर तुमसव कृत कृतार्थ ही जाऊगी ।

इस प्रकार देखा गया है कि है-श्रुतियों की वाञ्छित पूर्त्ति के लिए वृन्दावन में श्रीकृष्ण प्रकट हुये हैं । इस विषय में प्रमाण सुनो, भा: (१०-३२-३३) क्रीड़ा विशेष में समस्त सुन्दर प्रियतम के दर्शन जनित आनन्द से गोपिगण की समस्त मनोवेदना दुरीभूत हुई श्रुति-गण श्रीभगवान् के दर्शन प्राप्त होकर दर्शनज आनन्द से पूर्णहृदय होकर निखिल वासना को परिपूर्ण किये हैं, तद्रूप गोपीगण भी मनो-रथ की अवधि को प्राप्त कियेहैं । अर्थात् श्रुतिगण भी गोपी होकर

स्वायम्भुवमनौ पृश्णि सुतपा दम्पतीभ्यां तपसा श्रीभगवाना-राधितः, पुत्रत्वे वरो याचितः, श्रीभगवताचैवंस्वीकृतः, ततस्त द्वरसिद्धये स्वांशविष्णो रूपं दर्शितम्; यथा-(भाः१०-३-९)
"तमद्भुतं वालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्" ॥
इत्यादि, तथा पितरौ एवं रूपं दर्शयित्वा श्रीभगवानुवाच-(भाः१०- ३४४)

२२। "एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्त्यलिङ्गेन जायते ॥

इति तदेव स्वांश विष्णो रूपं दर्शितम्, न तु स्वरूपमेवेति ज्ञातव्यम् । यथा "सर्वदा द्विभुजः सोऽपि न कदाचिच्चतु-र्भुजः" इति यामल प्रमाणम् । तथैव (भाः१०-९०-४८) "जयति जननिवासो देवकीजन्मवादः इति जन्मवादमात्रम्, न तु श्रीभगवतो जन्म इत्येव ज्ञातव्यम् ॥३॥

श्रीकृष्ण प्राप्ति किये हैं। गोपीगण पञ्च प्रकार हैं-१। अङ्गजा, २। नित्या, ३। श्रुतिचरी, ४। ऋषिचरी, ५। देवी, अतएव श्रीकृष्णही स्वप्रकाश; परन्तु गर्भसम्भूत नहीं है। इस विषय में वादिगण की आपत्ति इस प्रकार है-श्रीकृष्ण गर्भसम्भूत न होने पर (भाः१०-१-२३) का संवाद स्वयं भगवान् परम पुरुषोत्तम वसुदेवके गृहमें जन्म ग्रहण करेंगे; हे देवीगण ! तुमसव उन की प्रीति विधान हेतु गोकुल में जन्म ग्रहण करो। ब्रह्म वैवर्त्त में वसुदेव की पत्नी देवकी से उत्पन्न होंगे" इत्यादि कथन पर सन्देह होगा।

इसका समाधान सुनो। स्वायम्भुव मन्वन्तर में पृष्णि सुतपा नामक दम्पती तप कर श्रीभगवान् के समीप पुत्रवर प्रार्थना करने पर भगवान् ने स्वीकार कर लिया, एवं वरको सफल वनाने के लिए आविर्भाव के समय श्रीवसुदेव देवकी को स्वांश विष्णुरूप का प्रदर्शन

४। अथ केचिद् वादिनो वदन्ति;-विष्णुपुराणे (५-१-५९-६०) ब्रह्मणा प्रार्थितः श्रीभगवान् क्षीरोदशायी विष्णुर्ब्रह्मणे स्वकेशौ दत्तवान्, तौ रामकृष्णौ वभुवतुरिति—

२३। "एवं संस्तुयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मन् केशौ सितकृष्णौ महामुने: ।।

२४। उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले ।
अवतीर्य भुवो भारं क्लेशहानिं करिष्यतः ।।

इत्यत्रापि सन्देहः । तत्र कार्ष्णा वदन्ति एतदेव सामान्य-वचनम्, विशेषोऽत्र श्रूयताम्, एवं श्रीकृष्णं प्रति नोक्तम्, यतः स एव सर्ववीजस्वरूपः स्वप्रकाशः, तस्यांशाः सर्वे, स

भी किया। भा: (१०-३-९) वसुदेव ने देखा वालक अद्भुत, पद्म-पलाशलोचन, चतुर्भुज, शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी इत्यादि। अत:पर मातापिता को यहरूप दिखा कर श्रीभगवान्ने कहा (भा:१०-३-४४) मेरा प्राक्तन जन्म स्मरण कराने के लिए मैं तुम्हें चतुर्भुजादिरूपमें दर्शन दिया, ऐसा न होने पर सम्पूर्ण मनुष्य चिह्नको देखकर मनुष्य-वुद्धि होगी। यह स्वांशरूप है, स्वरूप नहीं है। यामल प्रमाण से जाना जाता हैं, व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण सर्वदा ही द्विभुज हैं कभीभी चतुर्भुज नहीं हैं, (भा:१०-९०-४८) जीवगणके आश्रय व अन्तर्यामी रूप में अवस्थित देवकी यशोदा से आविर्भूत हुये हैं, अजका जन्म नहीं हैं, जन्मशब्द लौकिक लीलानुकरण का सूचक है, श्रीभगवान् का प्राकृत जन्म नहीं हो सकताहै ।।३।।

इस स्थल में कोई कोई पूर्व पक्ष का उत्थापन करते हैं,-विष्णु-पुराण में उक्तहै,-ब्रह्मा की प्रार्थना से क्षीरोदशायी श्रीभगवान् विष्णु ब्रह्मा को निज केशद्वय दिये थे, ये केशद्वय ही रामकृष्ण रूपमें अव-तीर्ण हुये हैं। एवं हे महामुने! देवगण द्वारा संस्तुत होकर भग-वान् परमेश्वर निज श्वेतकृष्णवर्ण केशद्वय को उखाड़े थे।

कस्यांश; ? अत एतन्नैवम्, तदंशौ विष्णु वलभद्रौ भविष्यत इत्युक्तौ यथा मत्केशौ भुवो भारक्लेशहानिं करिष्यतः। एतेनैतद्व्यक्तीकृतम्-यथा स्थितिकारको विष्णुरसुरादीन् हत्वा पृथिवीभारहरणं कृतवान्, श्रीकृष्णचन्द्रस्य नैव प्रभावःयथा–(भाः१०-३८-२२) न तस्य कश्चिद्–दयितः सुहृत्तमो, न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष एव वा" इत्यादि। यतः स एव कृष्ण–चन्द्रो निर्गुणः प्रकृते परः, केवलपरमानन्दस्वरूपः; तत्र मत्केशौ द्विवचनाद् विष्णुर्वलभद्रश्च। वलरामो यथा–(भाः१०-२-१३)"रामेति लोकरमणाद्वलभद्रं वलोच्छ्रयात्" वल इति नाशकस्वभावात्तमोगुणः। यथा गोविन्दवृन्दा-वने (२-७) भगवन्तं प्रति वलराम उवाच—

२५। "अहं तमोगुणमयश्चादितस्तव मायया।
न जाने तव तत्त्वं हि कीदृशं च जगत्प्रभो" ॥

अतएव वलोच्छ्रयत्वादनन्तांशः, वलभद्रस्तु दुष्टनिग्रहार्थम-

देवताओं ने बोला–यहकेशद्वय पृथिवी में अवतीर्ण होकर पृथिवी का क्लेश दूर करेंगे। इस वचन में सन्देह है। सम्प्रति इसके उत्तर में कार्ष्णगण कहते हैं,–उक्त वचनद्वय सामान्य रूपसे कथितहै, इसका विवरण सुनो; उक्त कथन श्रीकृष्ण सम्बन्धमें नहीं हुआहै; कारण श्रीकृष्ण सबके बीजस्वरूप स्वप्रकाश हैं, सब ही उनके अंशहैं। सुतरां श्रीकृष्ण किसका अंश होगा ? अतएव पूर्ववचनद्वय यथाश्रुत रूपमें व्याख्यातव्य नहीं है; तब कहा जा सकताहै कि उक्त पुरुषोत्तम के अंशस्वरूप विष्णुवलभद्र जन्मलाभ करेंगे, ये दोनों केशस्वरूप हैं, अर्थात् शिरोभूषण रूप हैं, वे अनायास पृथिवी का भार हरण करेंगे।

ऐसा होनेपर समझने में यह आया कि स्थितिकारी विष्णु

वतीर्णः। अतो द्वौ केशौ दत्तौ, किन्तु कृष्णचन्द्रः स्वप्रकाशः परमपुरुषः, यथा ब्रह्मोवाच (भाः१०-१-२३) "वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः" इत्यादि। वसुदेव-गृहे इत्यौपचारत्वात् पुरा प्रोक्तम्। तत्र भगवता क्षीरोदशायिना शिरोरूह व्याजेनेति सूचितम्, पृथिव्यां परमपुरुषो मम शिरोमणिस्वरूपो दिव्यवृन्दावनेश्वरः श्रीकृष्णः स्वप्रकाशो भविष्यतीति। तदंशौ विष्णुवलरामौ जातौ; यथोक्तम् (भाः१०-३३-२६) "अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः इति; किन्तु स भगवानेक एव, यथा गोविन्द वृन्दावने—स्वयं ज्योतिः स्वयंकर्त्ता
असुरादि को मारकर पृथिवी का भार हरण किए हैं, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र के इस प्रकार प्रभाव (शक्ति)नहीं हैं; (भा:१०-३८-२२) श्रीकृष्ण के कोई प्रिय अर्थात् सुहृत्तम नहीं है, अप्रिय, द्वेष्य, उपेक्ष्य भी नहीं है, कारण श्रीकृष्णचन्द्र निर्गुण, प्रकृतिअगोचर, केवल परमानन्द स्वरूप हैं। अतएव उक्त वचन 'मत्केशौ' का अर्थ विष्णु एवं वलभद्र समझना होगा। वलरामके विषय में (भा:१०-२-१३) उक्त है-आप लोक सकलकी प्रीति उत्पादन करेंगे इसलिए 'राम' नामसे एवं प्रभूत वलशाली होंगे इसलिए 'वलभद्र' नाम से अभिहित होंगे। बल शब्द प्रयोग से नाशक स्वभाव तमोगुण का ही इङ्गित है। श्रीगोविन्दवृन्दावनमें श्रीवलरामने भगवान्की कहाहै-हे जगत्प्रभो! मैं तुम्हारी मायासे आच्छन्न तमोगुण सम्पन्न होकर तुम्हारे तत्त्व किस प्रकारहै-नहीं जानता हूँ। इसलिए प्रभूत बलवान् हेतु उनके अंशमें अनन्तदेव का प्रकाश है, बलभद्र दुष्ट निग्रह के लिए अवतीर्ण हुए थे। सुतरां विष्णुबलभद्र स्वरूप अवगत कराने के लिए केशद्वय प्रदत्त हुआ है, किन्तु कृष्णचन्द्र स्वप्रकाश परम पुरुष, कारण (भा:१०-१-२३) में वसुदेव गृहमें सर्वावतारी पुरुषोत्तम श्रीभगवान् स्वयं प्रादुर्भूत होंगे यहाँपर वसुदेवगृहे कहनेसे तात्पर्य यह हुआ कि जीववत् पितृ औरस

स्वयंहर्त्ता स्वयंप्रभुः"; अतोऽंशेन कथमवतीर्णोऽपि कार्यार्थेन, यथा (भाः१०-३३-२६) "संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च" इति। अतो विष्णुवलरामस्वरूपांशेनेति।
अथांशेनैकवचनम्, द्वौ कथमुक्तौ? तदेवमंशे प्रोक्ते, एको, द्वौ, वहव, इति मन्तव्यम्,—अंशजाति स्वभावत्वात्।
तथा श्रीकृष्णयामले "एवं चतुःषष्टिभागैरवताराः परात्मनः" इति ॥४॥
५। केनचिदुक्तम् यदि जन्म औपचारत्वात्, तदा कथं वाल्यादि लीला प्रकटिता? तदेव भक्तानुरोधेन, यथा देवकीवसुदेव-नन्द यशोदादीनामनुग्रहाय वात्सल्यप्रेमामृतपानार्थम्। परञ्च सम्मोहन तन्त्रे—
से उनका जन्म नहीं हुआहै। सुतरां लौकिक जन्मानुकरण के हेतु उपचारमात्रही मानना होगा।

पूर्वोक्त वचनमें भगवान् क्षीरोदशायी केशच्छल से यह सूचना किए हैं कि मेरी शिरोमणि स्वरूप परम पुरुष दिव्य वृन्दावनेश्वर स्वप्रकाश श्रीकृष्ण प्रकट होंगे। (भाः१०-३३-२६) में कहा गयाहै कि भगवान् अंशके साथ (वलदेव विष्णुके साथ) जगत्पालनादि कार्य के लिए अवतीर्ण हुयेहैं। किन्तु परम भगवान् एक ही हैं। गोविन्द वृन्दावनमें कथित है-श्रीकृष्ण स्वयंज्योतिः, स्वप्रकाश, स्वयं (निरपेक्ष) कर्त्ता, स्वयं हर्त्ता, स्वयं प्रभु हैं। यदि कहो कि स्वयं भगवान् कृष्ण अंशके साथ क्यों अवतीर्ण हुये हैं? उसका उत्तर,-विलुप्त धर्म का पुनः प्रवर्त्तन एवं वर्त्तमान धर्मका विघ्ननाशन, एवं अधर्म का प्रश—मन करने के लिए उनका अवतार है। अतएव श्रीविष्णु बलराम स्वरूप को अंशद्वय के साथ कहा गयाहै।

सम्प्रति जिज्ञास्यहै कि-'अंशेन' इस पदका एकवचन दोव्यक्ति का वोधक कैसे हो सकताहैं? उत्तर,—अंश शब्द जाति स्वभाव से एक अथवा अनेक अर्थ वोधक में समर्थ है। श्रीकृष्ण यामलमें उक्त

२६। "मुनिः शुचिश्रवा नाम सुरर्चा नाम चापरः ।
कुशध्वजस्य ब्रह्मर्षेः पुत्रौ तौ वेदपारगौ ॥
२७। ऊर्द्धपादौ तपो घोरं चेरतुस्त्र्यक्षरं मनुम् ।
ॐ हंस इति कृत्वैवं जपन्तौ यतमानसौ ॥
२८। ध्यायन्तौ गोकुले कृष्णं वालकं दशमासिकम् ।
कन्दर्पसमरूपेण तारुण्यतरुणेन च ॥
२९। पश्यन्तीर्व्रजविम्वोष्ठीर्मोहयन्तमनारतम् ।
तौ कल्पान्ते तनुं त्यक्त्वा लब्धवन्तौ जनिं व्रजे ॥
३०। सुधीरनाम्नो गोपस्य सुते परमशोभने ।
ययोर्हस्ते च दृश्येते शारिकाशुकवादिनौ" ॥ इति ॥

एवं भक्तभावानुरोधेन वाल्यरूपं दर्शितम्—
यमलार्ज्जुनयोर्मोक्षणार्थं स्वसेवकनारदवचनप्रतिपालनाय ।
यथा (भाः१०-१०,२४,२५)

है—परमात्मा भगवान्‌के ६४ भागमें भी अवतार होताहैं ॥४॥

किसी की आपत्ति है कि लौकिक व्यवहारमें जन्म सिद्ध होने से भगवान् क्यों वाल्यादि लीला को प्रकट करतेहैं ? उत्तर;-भक्तानुरोधसे। जिस प्रकार श्रीवसुदेव देवकी, एवं श्रीनन्द यशोदा प्रभृति के प्रति अनुग्रह विस्तार एवं वात्सल्य प्रेमामृत पान हेतु वाल्यलीलाविष्कार किए हैं। अधिकन्तु सम्मोहन तन्त्रमें वर्णित है-ब्रह्मर्षि कुशध्वज के शुचिश्रुवाः एवं सुरच्या नामक वेद पारग पुत्रद्वय ऊर्द्ध-पाद से घोर तपस्या करने लगेथे। वे 'ओं हंसः' यह त्र्यक्षर मन्त्र को संयत चित्तसे जप करने के लिए प्रवृत्त हुए उनके ध्यानका विषय था गोकुल वासी दशमासिक वालकृष्ण, कन्दर्प समान रूप एवं यौवन द्वारा जो स्वदर्शनागता ब्रजदेविगण का नित्य मोह सम्पादन कर रहें हैं। वे दोनों कल्पक्षय में देहत्याग कर ब्रजमें जन्म लेकर सुधीर-

३१। "ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्त्तुं वचो हरिः।
जगाम शनकैस्तत्र यत्र तौ यमलार्ज्जुनौ ॥
३२। देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमे धनदात्मजौ।
तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना: ॥ इति।

अथः सेवकानुरोधेन बाल्य कौमार पौगण्डादिवयसा परिक्रीड़मानः। अन्यच्च नन्द यशोदयोर्वात्सल्यभाव पूरणार्थम्। यथा—"अहो भाग्यवती देवी यशोदा नन्दगेहिनी" इत्यादि कारणेन बाल्यम्,नन्दस्तु सर्वेषां व्रजवासिनां नायकः श्रेष्ठश्च। तस्य प्रियतनयो भूत्वा गोरक्षणादिकं कृतम्। किं तस्य किङ्करा न सन्ति? तदा कथमेवं कृतम्? तदेव (भा:१०-३३-३६) भजते तादृशी क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परोभवेदिति। एतत् कारणमिति मन्तव्यम् ॥५॥

नामक गोप की परमा सुन्दरी कन्या हुई थी। इन दोनों के हात में ही नाम गुणादि पाठक शुकशारी रहते थे। इस प्रकार भक्तभावानुरोध से हि श्रीबाल्यरूप प्रदर्शन कराते हैं।

यमलार्ज्जुन वृक्षद्वयका मोचन एवं निज सेवक श्रीनारद मुनि के वाक्य को सत्यकरने के लिए श्रीहरि धीरे धीरे यमलार्ज्जुनद्वय के निकट गये थे, कारण देवर्षि मेरा प्रियतम है, एवं यमलार्ज्जुनद्वय भी कुवेर पुत्रहैं। अतएव महात्मा नारद इन दोनों के सम्बन्धमें कहे थे कुवेर पुत्रद्वय को इस प्रकार कृपाकर वृक्षयोनि से उद्धार करेंगे। अतएव कहना होगा कि, सेवक के अनुरोध से ही भगवान् बाल्य कौमार पौगण्डादि वयस का आविष्कार कर लीला करते हैं। और एक कथा यह है कि–श्रीनन्द यशोदाके वात्सल्यभाव पूर्त्तिके लिए भी बाल्यलीला है, उक्त भी है, अहो! नन्द गृहिणीदेवी यशोदा कैसी भाग्यवती है"। नन्दमहाराज सकल व्रजवासिके नायक व श्रेष्ठ हैं,

६। अथ केनचिदुक्तम् अये ! यदि श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रः स्वप्रकाशः सर्वात्मा निरीह(भा:१०-३८-२२) "न तस्य कश्चिद् दयितः सुहृत्तमो, न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा' इत्यादि, तदा कथं पूतना, शकट तृणावर्त्ताघवकादीन् जघान ? किमेतत् ? अथ एतन् कारणं मत्तः श्रूयताम्। भगवान् कृष्णचन्द्रः सर्वत्र समदर्शनः, निरीह, परमरसमयः, केषाञ्चि-चिद्वधाय सङ्गत इति नैव; यथा श्रीशुक उवाच-(भा:-१०-२९-१५)

३३। कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ इति।

आगत्य येन एतादृग्भावेन श्रीकृष्णचन्द्रः स्पृष्टःस्तमेवात्म-सात्करोतीति, न तु केषाञ्चिन् मारणाय समुद्यतः स एव ॥

श्रीकृष्ण उनके प्रिय पुत्ररूपमें गोचारण प्रभृति कार्य भी किएहैं, नन्द महाराजके भृत्यादि क्या नहींथे ? तव क्यों गोचारणादि कार्य किए ? इससे कहाजाताहै-(भा:१०-३३-३६) आप इस प्रकार क्रीड़ा प्रकट करते हैं, जिसके श्रवणसे लोक कृष्ण भजनमें प्रवृत्त हो सकते हैं ॥५॥

पुनर्वार एक प्रतिपक्ष प्रश्न करते हैं, अये ! यदि तुम्हारे श्रीकृष्ण भगवान् स्वप्रकाश, सर्वात्मा, निरीह, हैं, उनके प्रिय, अप्रिय, सुहृत्तम, द्वेष्य, उपेक्ष्य कोई नहीं है, तव क्यों आपने पूतना शकट तृणावर्त्त अघ वकादिकी हत्या की ? इसका उत्तर करता हूँ,-सुनो, श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वत्र समदर्शन, निरीह, परम रसमय हैं, आप किसी को वध करने के लिए आविर्भुत हुएहैं वह कथा ठीक नहीं है, कारण (भा:१०-२९-१५) श्रीशुकदेव कहतेहैं,-जो सव जन नित्य यथा कथञ्चिद् सम्वन्ध मात्र से भी सर्व चिताकर्षक व सर्वदुःखनाशन श्रीहरि में काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य, सौहार्द विधान करते हैं, वे सव निश्चय ही तन्म यता प्राप्त होतेहैं।

असुर-वधाय सुसज्जः स एव, तदंशो विष्णुः पृथिवीपाल-नाय ? प्रत्युत्तरम्–अहो ! एतत् सत्यम्; किन्तु त्वरित-मागत्य विषोदे कालीयफणिदमनं कृतं कथमिति ? तत्राह–स्वांशो विष्णुस्तस्य सेवकः गरुड़ः, कालीयस्तु निरन्तरं गरुड़–स्य भयाद्‌गरुड़मयं समस्तं ददर्श; ततो गरुड़ो वैष्णवः, तदेव—

३४। "श्रीमत्पङ्कज तार्क्ष्य फाल्गुन शुक प्रह्लाद भीष्मोद्धव
व्यासाक्रूर पराशर ध्रुवमुखान् वन्दे मुकुन्द प्रियान् ।
यैस्तीर्थैरिव पावितं त्रिभुवनं रत्नैरिवालङ्कृतं
सद्‌वैद्यैरिव रक्षितं सुखकरैश्चन्द्रैरिवाप्यायितम् ।" इति ।

अतो गरुड़ो विष्णुरथः वैष्णवः, वैष्णवो विष्णुर्यथा–वैष्ण-

जो भी व्यक्ति जिस भावसे आकर श्रीकृष्णको स्पर्श करताहै, उसको श्रीकृष्णचन्द्र आत्मसात् करलेतेहैं । आप किसी कोभी मारणे के लिए प्रस्तुत नहीं हैं ।

सम्प्रति प्रश्न,–श्रीकृष्ण असुर वधके लिए सुसज्जितहुये, उनका अंश विष्णु पृथिवी पालन करने के लिये प्रस्तुत होगये, यह क्या तब सत्य बात् है ? प्रत्युत्तर अहो ! यह बात् सत्य है; आच्छा, वैसा यदि हो, तब क्यों आप जल्दीसे जल्दी आकर विषाक्त जलमें कालीय नागको दमन किया ? उसका उत्तर;–श्रीकृष्णका स्वांश विष्णु हैं, उनका सेवक गरुड़ है, कालीय निरन्तर गरुड़ के भय से सर्वत्र गरुड़ मय दिखता था, गरुड़ वैष्णव थे, कारण,–नाभिपद्मज (ब्रह्मा) गरुड़, अर्ज्जुन, शुक, प्रह्लाद, भीष्म, उद्धव, व्यास, अक्रूर, पराशर, ध्रुव प्रभृति मुकुन्द प्रिय भक्तवर्ग की वन्दना करता हूँ–जो सब त्रिभुवन को त्रिभुवनस्थ तीर्थके समान पवित्र करतेहैं, रत्नके समान अलङ्कृत हैं, सद् वैद्यके समान रक्षित एवं सुखकर चन्द्रके समान आप्यायित करते भी किये हैं ।

अतएव विष्णु वाहन गरुड़ वैष्णव, विष्णु वैष्णव में अभेद

वाल्लभते भक्तिं भक्त्या मां लभते नरः। तस्माद् वै वैष्णवो विष्णुः" इत्यादि। विष्णुरपि श्रीकृष्णस्य स्वांशः, तन्मयत्वात् कालीयायानुग्रहः कृतः, तेनाभयं ददौ सः, न तं निहतवानिति। अतएव वाल्यलीलया यत् कृतं तत् परोपकाराय। यथा (भाः१०-२९-१४)"नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप" इत्यादि। परन्तु भक्तप्रेमवशो भूत्वा तदनुरोधेन च यथा (भाः१०-९-१३,१४)

३५। "न चान्तर्न वहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं वहिर्यस्य जगतो यो जगच्च यः॥

३६। तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।
गोपीकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥"

एवं भक्त भक्तिवशेन बन्धनमपि स्वीकृतम्। तदेव श्रीभगवानुवाच—

तत्त्व है, कारण, कथितहै, वैष्णवके निकटसे भक्तिलभ्यहै, और भक्ति से मनुष्य मुझ को प्राप्त करलेता है, अतएव वैष्णव ही विष्णु इत्यादि। विष्णु भी श्रीकृष्ण स्वांश है, कालीय भयसे गरुड़की चिन्ता करते करते गरुड़ मय हो गया था, अतः उस को अनुग्रह किया है, उसका विनाश नहीं किया। अतएव वाल्यलीला में अनुष्ठित सकल कर्म ही परोपकार के लिए साधित है। (भाः१०-२९-१४) हे राजन्–भगवान् का आविर्भाव होताहै, केवल मानवगण के परम मङ्गल के लिए ही। कभी तो भक्तप्रेमवश होकर भक्तानुरोध सेभी अवतीर्ण होतेहैं। (भाः१०-९-१३,१४) जिनका अन्तर नहीं, वाहर नहीं पूर्व, अपर नहींहै, अथच जगत् के पूर्व–अपर वाहर अन्तरमें हैं, अधिकन्तु जो जगत् हैं, कारुण्यके वश मनुष्य देहमें अवतीर्ण, अव्यक्त, प्रत्यक्षादि प्रमाण के अगोचर भगवान् को पुत्र मानकर गोपिका यशोदा प्राकृत

३७। "नित्यमुक्तोऽपि वद्धोऽहं भक्तस्य स्नेहरज्जुभिः ।
अजितोऽपि जितोऽहं तैरवश्योऽपि वशीकृतः ।।"

अतएव च वाल्यलीलया यद् यत् कृतं तत् सर्वं मायया विहि-तम् । श्रीभगवता वाल्यरूपं यत् प्रकटितम्, तत् सर्वं मायिकम्, न स्वभावेन; यतः श्रीकृष्णचन्द्रस्य कैशोर-वयः स्वभावः, कैशोर-वयो विना यद्यद्रूपं तदेव मायिकमिति वेदादि-सर्व-शास्त्र-सम्मतम् । केचिद् वाल्यरूपं स्वभावं मत्वा तदेव प्रशंसन्ति-"वाल्यरूपं प्रशंसन्ति श्रीकृष्णस्य क्वचित् क्वचित्" इति; तदेव सम्मोहनतन्त्रे—

३८। "सन्ति तस्य महाभागा अवताराः सहस्रशः ।
तेषां मध्येऽवताराणां वालत्वमतिदुर्लभम् ।।"

वालक की भांति उदूखलमें वन्धन किए थे ।

श्रीभगवान् वोले,-मैं नित्यमुक्त हूँ । किन्तु भक्तके स्नेह रज्जु से वद्ध होता हूँ । मैं अजित होकर भी भक्तगणके निकट पराजित हूँ, अवश्य होकर भी भक्तवश हूँ । अतएव वाल्यलीला में जो जो उन्होंने कियाहै, वह वह ही माया (कृपा) से विहित हैं । श्रीभगवान् द्वारा प्रकटित वाल्यरूप सवही मायिक है, स्वभाव (धीरललितत्व) प्रयुक्त नहीं है, कारण श्रीकृष्ण के कैशोर वयस में ही स्वभाव प्रकटित होता है, कैशोर वयस व्यतीत अन्यान्य वयसको मायिक रूप में वेदादि शास्त्र मानते हैं । कोई कोई तो वाल्य वयसको ही स्वभाव मानकर प्रशंसा करते हैं, कभी कभी श्रीकृष्ण के वाल्य रूप की प्रशंसा की जाती हैं ।

सम्मोहन तन्त्रमें,-श्रीकृष्ण के महाऐश्वर्य माधुर्यमय सहस्र सहस्र अवतार हैं, उसके मध्यमें वाल्य भाव अति दुर्लभ । अन्यशास्त्र में किन्तु कैशोर स्वभाव की ही प्रशंसा सुनी जाती है; सर्वशास्त्र में

तदत्र शास्त्रान्तरे कैशोरस्वभावः—

३९। "बाल्यं मायामयं रूपं सर्वशास्त्रे प्रतिष्ठितम् ।
तस्माद् वृन्दावनान्तःस्थं कैशोरं च सुदुर्लभम् ॥"

तथा रुद्रयामले-"कुचकलस-पिबन्तं मायिनं कृष्णमीड़े" ।

तथैव वत्सहरणे—(भाः१०-१३-१५)

४०। "अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-
र्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ।
नीत्वान्यत्र कुरुद्वहान्तरदधात् खेऽवस्थितो यः पुरा
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥"

अतो बाल्यवयो मायामयम्; सर्वोपरि कैशोरवयः स्वभावः ।

७। तथा—

४१। "कृष्णचन्द्रविहारस्य स्थानं बहुतरं स्मृतम् ।
तत्रैव गोकुलं वृन्दावन परमदुर्लभम् ॥

बाल्यरूप मायामय कह कर प्रतिपादित हुआ है, अतएव वृन्दावन-स्थित कैशोर वयस सुर्लभही है। रुद्रयामलमें-कुचकलस-पायी मायी कृष्ण को स्तव करताहूँ। (भाः१०-१३-१५) वत्सहरणमें, हे परीक्षित! ब्रह्मा इसके पहले आकाशमें अवस्थान पूर्वक श्रीकृष्ण की अघासुर मोचनलीला दर्शनसे विस्मयान्वित हुए थे, वह ही भगवान्के नाभि कमलजात सर्वज्ञ स्वभाव प्राप्त होने परभी, किन्तु मायानाट्यमें अवतीर्ण बालक रूपी श्रीभगवान्के अन्यविध मनोज्ञ महिमा दर्शन लाभसे आकर उस स्थानसे माया कल्पित वत्स बालक को एवं पुलिनस्थ मायाकल्पित बालकगणको अन्यत्र रखकर स्वयं अन्तर्हित होगए। अतएव बाल्य वयस माया विजृम्भित, सर्वोपरि कैशोर वयसका (धीरललित नायकोचित) स्वभाव विराजमानहै ॥६॥

सम्प्रति धामप्रसङ्ग अवतारित हो रहाहै-श्रीकृष्णचन्द्र के

४२। सर्वेषामुपरिस्थानं वृन्दावनमितीरितम् ।
यत्र कैशोररूपेण स्वप्रकाशः स्वयं हरिः ॥

४३। गोकुले वाल्यभावस्तु वृन्दारण्ये किशोरकः ।
नानारूपधरोऽन्यत्र सर्वशास्त्रमतं यथा ॥

४४। सर्वस्माद्गोकुलं श्रेष्ठं तस्माद् वृन्दावनं वरम् ।
वृन्दावनात् परं स्थानं न कृष्णस्य प्रियं क्वचित् ॥

४५। वृन्दावने च कैशोररूपः स्वाभाविकः स्मृतः ।
गोगोपगोपीवंशीभिर्यत्र क्रीड़ति सर्वदा ॥"

तथा वराहसंहितायां (२-२०)

४६। "वृन्दावनविहारेषु कृष्णः कैशोरविग्रहः ।
अन्यारण्येषु स्थानेषु वाल्यपौगण्डयौवनम् ॥".

तथा सम्मोहनतन्त्रे—

४७। "देहेषु यौवनं रम्यं कैशोरं तत्र दुर्लभम् ।
किशोरं यत्नतः कृष्णं ध्यायेदानन्दविग्रहम् ॥"

विहार स्थल वहुतर है, तन्मध्ये गोकुल व वृन्दावन ही परम दुर्लभहै, सर्वोपरि धाम श्रीवृन्दावन को ही कहाजाताहै,कारण उसमें स्वप्रकाश स्वयं हरि कैशोर रूपमें विराजित हैं। गोकुल में वाल्यभाव एवं वृन्दावनमें किशोरभाव है, अन्यत्र अनेक त्रिविध रूपसे विहार करते हैं-यह ही शास्त्र सिद्धान्त है। सकल धाम से गोकुल श्रेष्ठहै, उससे भी वृन्दावन ही श्रेष्ठतर है। श्रीवृन्दावनको छोड़ कर कहीं पर ऐसा स्थान नहीं है, जो श्रीकृष्णके प्रियतर हो। श्रीवृन्दावनमें कैशोर रूप स्वाभाविक है,-उसमें भी आप सर्वदा गो गोप गोपी वंशी प्रभृति को लेकर क्रीड़ा करते रहतेहैं।

वराह संहितामैं कथित है-वृन्दावन विहारकालमें कृष्ण का

तथा वराहसंहितायां श्रीकृष्णस्वरूप-निरूपणे (२-३४)

४८। "व्रजेन्द्रनियतैश्वर्यो व्रजप्राणैकवल्लभः।
यौवनोद्भिन्नकैशोरवयः स्वाकृतिविग्रहः ॥"

तथा पद्यावल्याम् (८२)

४९। "श्याममेव परं रूपं वनं वृन्दावनं तथा।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः ॥"

तथा वृहद्वामनपुराणे परोक्षे श्रीभगवन्तं संस्तुत्य श्रुतय-ऊचुः—

५०। "आनन्दमात्रमिति यद्वदन्तीह पुराविदः।
तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः ॥"

ततः श्रुत्यभिमतमवधार्य स्वरूपं दर्शयति—

५१। "नानारासरसोन्मत्तो यत्र गोपीकदम्बकम्।
तद्कदम्बकमध्यस्थः किशोराकृतिरच्युतः ॥

कैशोर वयसही ग्राह्यहै एवं अन्यान्य वनमें विहारके समय बाल्य, पौगण्ड, यौवन का आविष्कार होता है। सम्मोहन तन्त्र में उक्त है-देह के विविध वयः काल के मध्यमें यौवन रमणीयहै, किशोर काल दुर्लभहै; अतएव आनन्दमय किशोर कृष्णका ही ध्यान यत्न पूर्वक करें। वराह संहितामें श्रीकृष्ण स्वरूप निरुपण प्रस्तावमें व्रजेन्द्रनन्द बाबाके सर्वैश्वर्य के एकमात्र भोक्ता, व्रजवासिके प्राणवल्लभ, यौवनो-द्रिक्त किशोर सुरूप विग्रह श्रीकृष्ण हैं। विष्णु यामलमें सर्वरूपके मध्यमें श्यामरूप एवं सकल वनके मध्यमें वृन्दावन ही श्रेष्ठहै। किशोर वयस ही ध्येयहै एवं आद्य (शृङ्गार) रसही उत्कृष्ट है। वृहद् वामन-पुराणमें परोक्षमें श्रीभगवान्‌का स्तवकर श्रुतिगण कहीं यदि वरप्रदान करना ही हो, तब पुराविद्गण जिनको आनन्द मात्र कहतेहैं। उस स्वरूप का प्रदर्शन करो; श्रुतिगण की वाञ्छित वस्तु को जानकर श्री-

५२। दर्शयित्वेति च प्राह ब्रूत किं करवाणि वः ।
दृष्टो मदीयो लोकोऽयं यतो नास्ति परं पदम् ॥"
ततो वराहसंहितायाम् (२-१५४,१५५)
५३। "सर्वदेवस्य मन्त्राणां विष्णुमन्त्रस्तु जीवनम् ।
श्रीविष्णोः सर्वमन्त्राणां कृष्णमन्त्रस्तु कारणम् ॥
५४। सर्वेषां कृष्णमन्त्राणां कैशोरमतिहैतुकम् ।
कैशोरं सर्वमन्त्राणां हेतुश्चूड़ामणिर्मनुः ॥"

अतो वृन्दावनं नित्यम्, श्रीकृष्णः कैशोरविग्रहो नित्य इति ज्ञापनीयम् । अथैतत् सर्वं मित्यनित्यसन्देहः । कैशोर विग्रहो नित्यमिति किमभिप्राय` इति तदाह-श्रीकृष्णचन्द्रः परिपूर्णानन्दरसमयो लीलया रूपवान् सप्रकृतिरिति–आदि-रसविस्तारणाय यथा नारदपञ्चरात्रे– "तयातिरसया रेमे

भगवान् आपना स्वरूप प्रदर्शन किए–गोपीमण्डल मध्यवर्त्ती नानाविध रासरसोन्मत्त, किशोर स्वरूप अच्युत स्व स्वरूप का प्रदर्शन कर वोले-सम्प्रति कहो; और मैं क्या करूँ ? तुमसव ने मेरा धाम का दर्शन किया होगा,इससे और कोई उत्कृष्टतर स्थान नहीं है। अनन्तर वराह संहितामें विष्णुमन्त्र–सर्वदेवता के मन्त्रावलिके जीवन स्वरूप, कृष्णमन्त्र विष्णुके सर्वमन्त्रके कारण है। सकल कृष्णमन्त्र के मध्य में कैशोर मन्त्र ही विष्णुमन्त्र का कारण है। सकल कृष्णमन्त्र के मध्यमें कैशोर कृष्णमन्त्र ही महाहेतु हैं, अतएव श्री कैशोर गोपाल मन्त्र ही सर्वविध मन्त्रका कारण हैं एवं मन्त्रचूड़ामणि हैं। अतएव श्रीवृन्दावन नित्य हैं, एवं तत्रत्य किशोर विग्रह श्रीकृष्ण भी नित्य हैं,-यह ही जानना होगा।

श्रीकृष्ण एवं श्रीवृन्दावनकी नित्यता के वारे में कोई संशय नहीं है, किन्तु किशोर विग्रह नित्य है, किस अभिप्राय से कहागया

प्रियया चैक-रूपया" इति। आदिरसः प्रधानमेव। आदि-रसोपभोगे वाल्यवयो न सम्भाव्यम्, यौवने तु रसाधिकक्षण-प्रमाणेन रसस्य न्यूनत्वम्, अतः कैशोरवय इति पूर्णमुज्ज्वल-रसे प्रशस्तम्; यतः क्षणे क्षणे रसस्य वर्द्धिष्णुता भवति; अत आदिरसे कैशोरवयः पूर्णरसमयं वर्द्धमानमिति ज्ञात-व्यम् ॥७॥

८। अथ केनचिदुक्तम्–अहो ! यदि वृन्दावने नित्यकिशोर-वयाः श्रीकृष्णस्तदा कथमन्यत्र मथुरादिषु गतवान् स्थिति-वैभवश्च प्रकटितः ? "वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति" इति यामल-प्रमाणम्। तदत्र सन्देहः। तत्र भाग-वता वदन्ति-अहो वृन्दावने कैशोर-वयसा श्रीकृष्णो नित्य-मस्तीति सत्यम्, नात्र सन्देहः। तदिति—

हैं ? उसका अभिप्राय है–कि–श्रीकृष्णचन्द्र परिपूर्ण आनन्द रसमय होकर भी लीलामें रूपवान् एवं प्रकृति सङ्गयुक्त हो गये हैं,—केवल आदिरस (शृङ्गार) विस्तार करनेके लिए। नारद पञ्चरात्रमें कथित है–समानरूपा महारसमयी वह प्रिया राधाके साथ रमण करने लगे। आदिरसही सर्वरस प्रधानहै। आदिरसास्वादनमें वाल्यकाल सम्भा-वनीय नहीं है। अल्पकाल स्थायी यौवने में किन्तु रस परिपुष्टि के लिए अधिक समय की सम्भावना न होने के कारण रसकी न्यूनता होती है। अतएव कैशोर वयसही पूर्ण, एवं उज्ज्वलरस में प्रशस्त है, कारण इसमें क्षण क्षण में रसकी वर्द्धिष्णुता होती है,सुतरां आदि रसमें किशोर वयसही पूर्णरसमय एवं वर्द्ध मान्है ॥७॥

अब किसी की आपत्ति यह है कि–यदि वृन्दावनमें नित्य किशोर वयस्क श्रीकृष्णहै हैं, तब किस प्रकार आप मथुरादि अन्य स्थलमें गमन अवस्थान एवं वैभव को प्रकटित किये हैं ? यामल बचन से

५५। "वृन्दावनाद्यदि गतो भगवान् मुकुन्दो,
गुञ्जाप्रवाल-शिखिशिखण्ड-किशोर नीपाः।
वंशीवरव्रजवधूजन–धेनुसंघा,
एषां न कोऽप्यनुगतो वद कोऽत्र हेतुः ? "

अतएव श्रीराधाकान्तोऽंशेनान्यत्र गतवान्, स्वरूपेण वृन्दावनेऽवस्थितः। अथ केचिद्वदन्ति–'अयैतैर्वेशभूषाभिर्न गतवान्, तेन किं स एव गतवान् ?' यथा सम्मोहनतन्त्रे– "ध्यानस्य संस्थितिर्नास्ति हरेरिच्छानुरूपतः" तत्र प्रत्युत्तरम्-तदेव वृन्दावनान्तर्विनान्यत्र वोद्धव्यम्, वृन्दावनेऽप्येतैर्वेशभूषादिभिस्तिष्ठन्नित्यसन्देहः। किन्तु ये यद्रूपं श्रीकृष्णं ध्यायन्ति, तेषु तद्रूपं दर्शयति, यथा भगवद्गोतासूपनिषत्सु श्रीभगवानुवाच–(४-११) "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" इति। तत्र-स्वप्रकाशो वंशी मयूरपुच्छ-गुञ्जा-पीतांशुकादिभिर्भूषित एव यैर्वृन्दावनचन्द्र आराध्य दृष्टः, तैस्तैरेतैर्वेशभूषादिभिरेव। यथा नारदपञ्चरात्रे विजयं प्रति दुर्गोवाच—

प्राप्त होता है कि श्रीकृष्ण वृन्दावन को छोड़कर कहीं नहीं जातेहैं। यहाँपर सन्देह। उसके उत्तरमें भागवतगण कहतेहैं–अहो ! वृन्दावन में कैशोर वयसान्वित श्रीकृष्ण विराजमान हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। देखो ! भगवान् मुकुन्द यदि वृन्दावनको त्यागकरतेहैं, तब गुञ्जा, प्रवाल, मयूरपिञ्छ, किशोरकदम्ब, वंशीरव, व्रजवधूगण एवं धेनुवृन्द के एकभी उनके अनुगमन क्यों नहीं किया ?

अतएव श्रीराधाकान्त अंशसे ही अन्यत्र गए हैं किन्तु स्वरूपतः श्रीवृन्दावनमें ही अवस्थितहैं। इसपर कुछ व्यक्ति कहते हैं,-श्रीकृष्ण

५६। "कोटिचन्द्रमुखं कोटिमन्मथाद्भुतविग्रहम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं श्यामं परमसुन्दरम् ॥
५७। वृन्दावनमहाहेममणिमन्दिरमध्यगम् ।
वंशीविनोदिनं गोपसुन्दरी प्राणनायकम् ॥
५८। नानारससुधोद्गारप्रेमरङ्ग तरङ्गिणम् ।
गूढ़मर्मरसानन्दमहाम्भोधि-महाविधुम् ॥
५९। राधिकाहृदयाकूतरस-लाम्पट्यविभ्रमम् ।
सुधा-तरङ्गिणीलीलालोहिताम्वुजलोचनम् ॥

व्रजके वेशभूषादि के साथ न जाकर स्वयं गए हैं क्या ? सम्मोहन तन्त्रमें उक्तहै कि-श्रीहरि इच्छामय होनेके कारण उनके ध्यानके लिए किसी प्रकार नियमितस्थान नहींहै, सम्प्रति समाधान इस प्रकार है- उक्त कथन वृन्दावन व्यतीत अन्य स्थानके लिए है, ऐसा समझना होगा। वृन्दावनमें आप उक्त-वेश भूषादि को धारण कर नित्य अव-स्थान कर रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है, अपर पक्षमें जो भी व्यक्ति जिस प्रकार श्रीकृष्णका ध्यान करतेहैं श्रीकृष्ण ध्यानके अनुरूप रूपमें ही दर्शन देतेहैं। (गीता-४-११) जो लोक जिस भावसे मेरी शरण लेताहै, मैं उन सवका भजन अनुरूप भावसे ही करता हूँ। स्वप्रकाश वंशी मयूरपिञ्छ गुञ्जा प्रभृति द्वारा भूषित श्रीवृन्दावनचन्द्र की आराधनाकर जो लोक उनका दर्शन किएहैं, वेसव ही उक्त वेश-भूषादि मण्डित इष्टदेव को देखे हैं। यथा नारद पञ्चरात्रमें -(विजयाके प्रति दुर्गाका वचन) जिनका मुखारविन्द कोटि चन्द्रसे भी सुन्दर; जिनका विग्रह कोटि मन्मथसे भी चमक्प्रद, जिनकी तेज: कोटि कोटि सूर्यवत् देदीप्यमान् उसपरमसुन्दर श्यामसुन्दर की भावना करें। वह वृन्दावनमें हेममणिमय मन्दिर मध्यवर्त्ती, वंशीविनोदी, गोपीगणके प्राणवल्लभ, नाना रसामृत वर्षि प्रेमरङ्गमें नित्य तरङ्गा-यित हैं, गूढ़ मर्म (शृङ्गार) रसानन्द महासमुद्र का महाचन्द्र, राधा

६० । द्विभुजं कौस्तुभानन्दिवनमालाविभूषितम् ।
पीताम्बर-महारत्नहाराभरणभूषितम् ॥

६१ । रत्नकुण्डलभादीप्यन्नासाग्रमणिमौक्तिकम् ।
विम्वमाणिक्यवन्धूक-सुन्दरद्विज-सुन्दरम् ॥

६२ । चतुःसम-महागन्ध-मोहितानेकमानसम् ।
वर्हापीड़महाकान्त-रसप्रेम-मुखाम्बुजम् ॥

६३ । कन्दर्पलोककन्दर्पं रमणी-प्रेमवल्लभम् ।
किङ्किणीस्वनमञ्जीर-मणिलिप्त-पदाम्वुजम् ॥

६४ । भावयेदात्मभावेन परमात्मानमच्युतम् ।
कृष्णमन्त्र-जपेनैव कृष्णप्रेम लभेन्नरः ॥" इति ॥८॥

९ । अथ ब्रह्मवैवर्त्ते पूर्वजन्मनि नन्दयशोदयोस्तपोवशो भूत्वा श्रीभगवानाविर्बभूव, तदा भगवन्तं (वसुः) ददर्श; यथा—
हृदयाभिप्रेत रस लाम्पट्यमें निरन्तर विभ्रमयुक्त, अमृत प्रवाहिणी लीलाविनोद द्वारा उनके लोचनकमल रक्तवर्ण है, द्विभुज कौस्तुभ समन्वित, वनमाला विभूषित, पीतवसन, महारत्नहार एवं आभ-रणादि द्वारा उनका श्रीविग्रह सुशोभित हैं, रत्नमय कुण्डलको प्रभा से नासाग्र वर्त्ती मणिमुक्ता दीप्ततर हो रही हैं; विम्वफल, माणिक्य एवं वन्धुक पुष्पसे भी सुन्दर दन्त पङ्क्ति से परम रमणीय है, वह स्वीय अङ्ग निःसृत चतुःसमको (चन्दन, अगुरु, कस्तुरिका, कुङ्कमादि के एकत्र मिलन) महासुगन्धि से वह स्वजनके चित्त को मोहित कर रहे हैं, मयूरपुच्छ धारणसे महाकमनीय एवं रस प्रेमपूर्ण मुखकमल मन्मथ मन्मथराज की भाँति, आप रमणीगणके रति नायक हैं । किङ्किणी शब्दसे मुखरित मञ्जीर (नूपुर) मणि द्वारा उद्दीप्त चरण कमल उनके हैं, इस प्रकार परमात्मा (परम वल्लभ) अच्युत की भावना निज भावसे नित्य करें । श्रीकृष्ण मन्त्र जपद्वारा ही मानव

६५। "ततो वसुर्हृष्टमना दृष्ट्वा तं पीतवाससम् ।
महामरकतश्यामं शिखण्डाबद्धकुन्तलम् ।।
६६। किशोरं हार-मञ्जीर-वलयाङ्गदभूषणम् ।
जितचन्द्रमुखं देवं सुन्दरं सुभ्रुनासिकम् ।।
६७। विम्वाधरपुटद्वन्द्वशोभिदन्तावलिद्वयम् ।
स्मितावलोकिनं धीरं द्विभुजं सर्वसुन्दरम् ।।
६८। निपत्य दण्डवद्भूमौ स ननाम जनार्दनम् ।
हृष्यत्तनुरुहो भक्त्या कृष्णं प्रति वदिष्यति ।।" इति ।
तथा ब्रह्मसंहितायाम्—(५-३०)
६९। "वेणुं क्वणन्तमरविन्द-दलायताक्षं,
वर्हावतंसमसिताम्बुद-सुन्दराङ्गम् ।
कन्दर्प कोटिकमनीयविशेषशोभं,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।"

श्रीकृष्ण प्रेमलाभ कर सकते हैं ।।८।।

ब्रह्म वैवर्त्त में कथितहै–नन्द यशोदाके पूर्वजन्म में तपो वशी-भूत भगवान् आर्विभूत होनेपर (द्रोण नामक वस्तु नन्दमहाराज का पूर्वरूप) आपने भगवत् स्वरूप की दर्शन किया। यथा–उक्त द्रोण, वसु आनन्दित मनसे उनको देखा, पीताम्वरधारी, महामरकतवत् श्यामलवर्ण, मयूरपिञ्छ शोभित केशकलाप, वयस में किशोर; हार नूपुर वलय अङ्गद प्रभृति भूषणसे उद्दीप्त कलेवर चन्द्रविजयी मुख-मण्डल, क्रीड़ाविनोदी सुन्दर सुभ्रु सुनासायुक्त आप (श्रीकृष्ण) विम्वा-धर युगल में दन्तावलिद्वय द्वारा शोभित हो रहे हैं, मृदुमन्द हास्य युक्त दृष्टिभङ्गि, धीर द्विभुज, सर्वाङ्ग सुन्दर जनार्दन को देखकर भूमिमें गिरकर आपने दण्डवत् प्रणति की एवं भक्तियुक्त पुलकायित देह से श्रीकृष्णको लक्ष्यकर कहने लगे। ब्रह्मसंहितामें उक्तहै–वेणु-

तथा गोविन्दवृन्दावने वलरामं प्रति श्रीकृष्ण उवाच—

७०। "शब्दब्रह्ममयीवंशी वदनो रससागरः ।
वनमाली पीतवासाः सुकुञ्चित–शिरोरुहः ॥

७१। वर्हिवर्ह-कृतोत्तंसः पारिजातावतंसकः ;
प्रेमानन्दमयः शुद्धः सर्वदा नवयौवनः ।
एवंरूपः सदैवाहं तिष्ठाम्यत्रैव सर्वथा ॥"

अत्र केनचिदुक्तम्–एवंरूपेण वृन्दावने नित्यं तिष्ठतीति तदा कथं मथुरां गत इति सर्वैर्दृश्यते, अनन्तरं वृन्दावने कथं दृग्गोचरो नैवेति सन्देहः । अहो एतत्कारणं मत्तः श्रूयताम्–आविर्भाव-तिरोभावावीश्वरस्य वोद्धव्यौ, तदेव भक्ताभक्तरूपेण, यथा ब्रह्माण्डपुराणे—

वादन परायण, पद्मपलाश लोचन, मयूरपिच्छ चूड़ाधारी, श्याम जलधरसे भी सुन्दर तर अङ्गकान्ति विशिष्ट,कोटि कन्दर्पके लोभनीय, महाशोभानिधान, आदि पुरुष गोविन्दका भजन करूँ । गोविन्द वृन्दावनमें लिखित है–वलरामको श्रीकृष्ण कहते हैं,-शब्द ब्रह्ममय वेणुवादनशील, रससागर, वनमाली, पीताम्बर, सुकुञ्चित केशकलाप, मयूरपिच्छ चूड़ा, पारिजातकृत कर्णभूषण, प्रेमानन्दमय, शुद्ध, नित्य यौवन स्वरूपमें सदाकाल ही मैं इस वृन्दावनमें सर्वथा अवस्थान करता हूँ ।

यहाँपर किसी की आपत्तिहै कि यदि उक्त स्वरूपमें नित्य वृन्दावनमें उनका अवस्थानहोताहै,तव मथुराको क्यों गये ?यह तो सर्व गोचर लीलाहै, मथुरा गमनके वाद तो वृन्दावनमें आप दिखाई नहीं दिये ? उसका कारण सुनो–ईश्वरका आविर्भाव एवं तिरोभाव स्वीकार करना पड़ता है, वह भी भक्तको विचार कर ही होताहै, अर्थात् भक्तके निकट आविर्भाव एवं अभक्तके निकट तिरोभाव प्रति–

७२। "अनादेयमहेयञ्च रूपं भगवतो हरेः।
आविर्भाव-तिरोभावावस्योक्ते ग्रहमोचने ॥"

तथा गोविन्दवृन्दावने तृतीयपटले नारद-प्रश्ने श्रीकृष्ण उवाच—

७३। "इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्।
अत्र देवाश्च भूतानि वर्त्तन्ते सूक्ष्मरूपतः ॥

७४। सर्वतेजोमयश्चाहं न त्यजामि वनं क्वचित्।
आविर्भावस्तिरोभावो भवेदत्र युगे युगे ॥

७५। तेजोमयमिदं रम्यमदृश्यं चर्मचक्षुषा।
रहस्य प्रेमभावस्तु वृन्दारण्ये युगे युगे ॥
ब्रह्मादीनां सुराणाञ्च न भवेद् दृष्टिगोचरः ॥" इति ॥९॥

१०। अथ यदि केषाञ्चिद् दृग्गोचरो नैव, तदा कथमुदार-लीलया समस्तलोकगोचरो भूत्वा गोपगोपीभिर्नानाक्रीड़ा-रसो विस्तारितः? अथ तदेव श्रूयताम्-ग्राम्यलोकेन सह यत् कृतं तत् स्वमाययाच्छादितो भूत्वा, किन्तु वृन्दावने रास-क्रीड़ादि यत् कृतम्, तदङ्गजा नित्या श्रुतिमुनिजादेवकन्यादि-

फलित होता है; ब्रह्माण्ड पुराणमें कथितहै-श्रीभगवान् श्रीहरिके रूप अग्राह्य होने परभी वह उपादेयहै, इस रूपका ग्रहण होनेपर आवि-र्भाव एवं ग्रहणातिरिक्त होनेपर तिरोभाव कहाजाताहै। श्रीगोविन्द वृन्दावनमें नारद को श्रीकृष्ण ने कहा है-केवल रमणीय वृन्दावन मेरा ही धामहै, इसमें मैं अवस्थान करताहूँ एवं देवतागण अन्यान्य प्राणीगण सूक्ष्मरूपमें अवस्थान करते हैं। तेजोमय रमणीय वृन्दावन चर्मचक्षु का अगोचर है, प्रतियुगमें वृन्दावन का रहस्य पूर्ण प्रेमभाव, किन्तु ब्रह्मादि देवगण की दृष्टिगोचर नहीं होताहै ॥९॥

गोप्यस्तासां गोचरो भूत्वा (रासक्रीड़ादिकं) कृतवान्,स्वमायया स्वप्रकाशः स्वयमेव नान्येषां गोचरः कथमभूत्, तदेव अङ्गजा राधा अङ्गवन्नित्या नित्यं सन्ति ईश्वरवत्, श्रुति–वेदास्त एव भगवदङ्गमेव। एक–सप्ततिसहस्रमुनीनां शतकल्पावधि अग्निशाय्याग्निभुक्कठोरतपसा वशो भूत्वा तेषाभिमतसिद्धयै तानेवात्मसात्कृतवान् । देवकन्या ब्रह्मा–ज्ञया गोप्यो बभूवुः । एतासां नित्यगोचरः श्रीकृष्णचन्द्रो नित्यवृन्दावनस्थ इत्यसन्देहः । तत्र प्रमाणमधिगम्यताम्–यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रो मथुरागमनसमये गोपीः प्रत्यवदत् तदेव (भाः१०-३९-३५)

सम्प्रति फिरसे प्रश्न उठा,–यदि श्रीकृष्ण किसीके नयन गोचर ही नहीं होंगे, तब किसप्रकार उदार लीलामें समस्त लोक दृश्य होकर गोप गोपीगणके साथ विविध क्रीड़ारस का विस्तार कैसे किया ? सम्प्रति उत्तर सुनो–ग्राम्य लोके के साथ श्रीकृष्ण जोसब लीला सम्पादन किये हैं, वेसब ही निज मायाके आच्छादन से किये हैं, उसको ही अङ्गजा, नित्य, श्रुतिचरी, ऋषिचरी, देवकन्यादि गोपीगण के गोचरीभूत किये थे, नित्य मायाके बल से स्वयं ही स्वप्रकाश होकर भी रासलीलादिको प्रकट किये हैं, तब अन्य नयन गोचर कैसे नहीं हुये हैं ? अङ्गवत् होने के कारण श्रीराधा, नित्यसिद्ध, वे सब भी ईश्वरवत् नित्यसिद्ध हैं, श्रुतिवेदगण, श्रीकृष्णके ही भगवदङ्ग ही हैं ।

मुनि–एकात्तर हजार मुनि, वेसब प्रत्येक व्यक्ति अग्निस्थल में शयन, एवं अग्नि (अनल वत् उत्तप्त द्रव्य) भोजनरूप कठोर तप–श्चर्या शत कल्प पर्यन्त किये थे। तपस्या से वशीभूत होकर श्रीभग–वान् उन सबकी अभिवाञ्छित पूर्तिके लिए उन सबको गोपीभाव प्रदान कर आत्मसात् किए थे। देवकन्यागण, ब्रह्मा की आज्ञासे गोपी हुई थीं; इन सबके नित्यगोचर श्रीकृष्णचन्द्र नित्य ही वृन्दावन-

७६। "तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ।
सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥"

तथा ब्रह्मवैवर्त्ते—

७७। माधिं कुरुध्वं सुभगाः समेष्ये, तूर्णं विलम्बो न ममेति कृष्णः
इत्थं समाश्वास्य जनं समुत्सुकं, चचाल तूर्णं सह गोपवृन्दैः ॥
इत्येवं स्वनिगमः-आयास्यामीति, तदेव कथं व्यक्तं नाभूत् ?
तदाह श्रीभगवान् कुत्र वा गच्छति, कुत्र वा आगच्छति ?
यथादियामले-"वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति"
इति । आयास्यामीत्युक्तमौपचारिकत्वात्, वास्तवं नैव;
दौत्यकैरिति वचनादेतद् व्यक्तीकृतम् । इत्येवं नित्यवृन्दावन-
स्थः श्रीराधाकान्तोऽंशेन श्रीविष्णुस्वरूपवासुदेवेनैव गतवान्
स्यात्, यदि वृन्दावनत्यागो भवेत्तदा पुनरागमनञ्च न
भविष्यत्येवेत्यादि ज्ञातव्यम् ॥१०॥

वासी हैं—इसमे कोई सन्देह नहीं है, इसका प्रमाण भी सुनो—मथुरा गमन कालमें श्रीकृष्णचन्द्र गोपीगण को जोकुछ कहे थे वह ही (१०-३९-३५) यदुकुलमणि निज प्रयाण के समय गोपीगण को महाकातरा देखकर कहे थे, "मैं शीघ्रही आरहाहूँ ।" इसप्रकार सप्रेम आश्वास वाणी दौत्यद्वारा सान्त्वना प्रदान किए थे ।

ब्रह्म वैवर्त्तमें भी उक्तहै—हे महाभाग्यवती गोपीगण ! तुम सवदुःख न करो, मैं सत्वर ही आऊँगा देरी नहीं होगी । इसप्रकार आश्वास वाणीद्वारा समुत्कण्ठित व्रजवासिगण को आश्वस्त कर गोप वृन्दके साथ यात्रा किये थे । यह ही उनकी निज प्रतिज्ञा है-"मैं आऊँगा" । ऐसा होनेपर आप व्यक्त क्यों नहीं हुये ? उत्तर में कहा जा सकताहै कि, श्रीभगवान् कहाँजाते हैं, और कहाँ आतेहैं ? आप सर्वत्र ही सदाकाल वर्त्तमानहैं । आदि यामलमें उक्तहै,-वृन्दावन

११। अथ केचिद्वादिनो वदन्ति—एतासां चेन्नित्यगोचरः श्रीकृष्णचन्द्रस्तदा कथं उद्धवं प्रस्थाप्य गोपीनां विरहनिवारणं कृतवानिति ? यथा (भाः१०-४६-३)

७८। "गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नः प्रीतिमावह ।
गोपीनां तद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥"

अथाङ्गजा-नित्या-श्रुतिमुनिरूपाः प्रति नैवम् । देवकन्यां प्रति ज्ञातव्यम्, कथमेवम् ? ता एव ब्रह्माज्ञया देवकन्या भुवि समागत्य गोप्यो भूत्वा भगवत्प्रीतिं चक्रुः, न तु प्रेम-भक्त्या तपसा वा आराधितः प्रभुर्नैवं ब्रह्माज्ञयापि, यथा ब्रह्माह—(भाः१०-१-२३)

को परित्याग कर आप कहीं नहीं जातेहैं, इस वाक्यके बलसे 'आयास्यामि' यह वाक्य वास्तव नहीं उपचारमात्र है, 'दौत्यकैः' शपथ वाक्यरूप दूत द्वारा निवेदन किये' इस वचनसे वह परिस्फुट हुआ ऐसा होनेपर यह सिद्धान्त हुआ कि नित्यवृन्दावनस्थ श्रीराधाकान्तः अंशमें विष्णुस्वरूप वासुदेवस्वरूपसे ही मथुरा प्रस्थान किए थे; यदि स्वयं वृन्दावनत्याग करेंगे तो पुनर्वार वृन्दावन आगमन होगा ही नहीं इत्यादि ॥१०॥

इसमें कोई कोई प्रतिपक्ष कहतेहैं—यदि कृष्ण गोपीगणके नित्य गोचर होंगे,तब क्यों उद्धवको भेजकर गोपीगणके विरह का अपनोदन किए थे ? यथा (भाः१०-४६-३) हे सौम्य उद्धव ! तुम व्रजमें जाकर मेरे पितामाताको प्रीतकरो, मेरा संवाद सुनाकर गोपीयों की विरहव्याधि की दूरकरो इत्यादि । इसके उत्तरमें कहतेहैं—अङ्गजा (राधादि) नित्यसिद्धा, श्रुतिचरी एवं मुनिचरी गोपीयों के सम्बन्ध में यह वाक्य प्रयोज्य नहीं है, देवकन्या को लक्ष्यकर उक्त वाक्य उक्त हुआहै । इस प्रकार क्यों ? उसको भी कहता हूं, ब्रह्माके आदेश से देवकन्यागण पृथिवीमें आकर गोपी होकर भगवत् प्रीतिविधान

७९। "वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्त्वमरस्त्रियः॥" इति।

अतएव देवकन्याः प्रत्येवम्, यथा देवकन्याभिर्ज्ञातः श्रीकृष्णचन्द्रो मथुरां गत एव, अन्यासां भगवतो विच्छेदोऽस्ति नैवम्। यथादियामले —

८०। "प्रोक्तेयं विरहावस्था स्पष्टलीलानुसारतः।
कृष्णेन विप्रयोगः स्यान्न जातु व्रजवासिनाम्॥"

तथा स्कान्दे मथुराखण्डे—

८१। "वत्सैर्वत्सतरीभिश्च सदा क्रीड़ति माधवः।
वृन्दावनान्तरगतः सरामो वालकैर्वृतः॥"

तथा ब्रह्माण्डे—

८२। "कैरपि प्रेमवैराग्यभाग्भिर्भागवतोत्तमैः।
अद्यापि दृश्यते कृष्णः क्रीड़न् वृन्दावनान्तरे॥"

किए थे। वे सब प्रेमभक्ति द्वारा तपस्याकर श्रीप्रभुकी आराधना नहीं किए थे. ब्रह्मा भी उनसब के प्रति उसप्रकार आज्ञा भी नहीं किए थे। ब्रह्मा की उक्ति (भा:१०-१-२३) साक्षात् भगवान् परम-पुरुष वसुदेव गृहमें अवतार ग्रहण करेंगे, उनकी प्रीति कार्यके लिए तुमसब देवस्त्रीगण नन्द व्रजमें जन्मग्रहण करो। अतएव देवकन्यागण हो उक्त वचनका लक्ष्य हैं, देवकन्यागण समझ गयी थीं कि कृष्णचन्द्र मथुरा गए हैं, अन्यान्य गोपीयों के साथ श्रीभगवान् का विच्छेद नहीं हुआ है।

यथा आदियामलमें स्पष्ट प्रकट लीलानुसार यह विरहावस्था वर्णित हुई। कृष्णके साथ व्रजवासिगणके विरह कभी भी नहीं हो सकता है। स्कान्दमें वत्स, वत्सतरी (तिन वत्सरके वत्स) गणके साथ वृन्दावनमें वलराम एवं वालकगण के साथ माधव नित्य क्रीड़ा करते हैं। ब्रह्माण्डमें उक्तहै-कोई भी प्रेम वैराग्यवान् भागवतोत्तमगण

तथैव ब्रह्मवैवर्त्ते नारदं प्रति ब्रह्माह—

८३। नित्यं क्रीड़ति विश्वात्मा गोपैर्गोपीभिरेव च।
पीतवासा जगत्स्वामो वनमाली स्मितेक्षणः ।। इत्यादि।

अतएव नित्यवृन्दावनस्थः श्रीकृष्णचन्द्र इति ज्ञातव्यम्। कल्पकोटिमहातपसा प्रेमभक्त्या महासाधनेन भक्तदृग्-गोचरो भवति। अन्यथा क एव द्रष्टुं समर्थाः ? नित्यं वृन्दावने स्वप्रकाश इति ज्ञातव्यम्। यथा हस्तामलके (१०मः श्लोः) "घनच्छन्नदृष्टिर्घनचछन्नमर्कं, यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढ़ः" इत्यादि; तथैवं निरन्तरं वृन्दावने स्वप्रकाशः साधनव्यति-रेकेण श्रीभगवन्तं राधाकान्तं द्रष्टुं कथं योग्यः, एवमज्ञात्वा मूढ़ैः कथ्यते-श्रीभगवतः श्रीकृष्णचन्द्रस्य वृन्दावनत्याग इत्यादि।

८४। वृन्दारण्ये निरवधि भगवान् कृष्ण आत्मस्वरूपो
गोगोपीभिर्विलसति परमानन्दपूर्णप्रकाशः।
एवं ब्रह्मादिभिरपि निगमैः स्तूयते-तत्परत्वं
माणिक्यं तत् कुरु हृदाभरणं राघवेणेहितं यत् ॥

इति श्रीकृष्णभक्तिप्रकाशरत्ने श्रीकृष्णस्य वृन्दावनान्तर्नित्य-प्रकाश—निरूपणं नाम चतुर्थं रत्नम् ।।४।।

अद्यापि वृन्दावनमें क्रीड़ा परायण श्रीकृष्ण को देखपाते हैं।

ब्रह्म वैवर्त्त में नारद को ब्रह्मा कहते हैं—गोप गोपीगणके सहित पीताम्बर वनमाली मधुर हास्ययुक्त—नयन भूषित विश्वात्मा जगदी-श्वर नित्य क्रीड़ा करतेहैं इत्यादि; अतएव श्रीकृष्णचन्द्र नित्य ही श्रीवृन्दावनमें विराजमान हैं, जानना होगा;—कोटि कल्पकी तपस्यासे प्रेमभक्ति के योगसे महासाधन करने पर आप भक्तके नयन गोचरी-भूए होते हैं। अन्यथा उनको कोई नहीं देख सकताहै। नित्यवृन्दावनमें

⁂पञ्चम: प्रकाश:⁂

१। तस्य नन्दात्मजस्यापि ब्रह्मण: परमात्मन: ।
अंशांशांशावताराणां प्रवक्ष्ये परमोत्सुकम् ।।

१। अथ वृन्दावनान्मथुरां गत: क एष:, तदुच्यताम् । तदत्र स एव श्रीकृष्णचन्द्र: सर्वसम्पूर्णप्रकाशस्तथाल्पप्रकाश इति भेदत्वात् पृथङ्मन्यते यथा-(श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ २-१-२२१,२२२)

२। "हरि: पूर्णतम: पूर्णतर: पूर्ण इति त्रिधा ।
श्रेष्ठमध्यादिभि: शब्दैर्नाट्ये य: परिपठ्यते"

३। प्रकाशिताखिलगुण: स्मृत: पूर्णतमो बुधै: ।
असर्वव्यञ्जक: पूर्णतर: पूर्णोऽल्पदर्शक: ।।"

स्वप्रकाश आपहैं, यह समझना होगा ।

हस्तामलक भाष्यमें कहागयाहै—अतिमूढ़ व्यक्ति मेघद्वारा आच्छादित दृष्टि होकर मेघके अन्तराल स्थित सूर्य को निष्प्रभ मानते हैं। अतएव निरन्तर वृन्दावनमें स्वप्रकाश श्रीकृष्ण को साधन व्यतीत क्यैसे देखने की योग्यता हो सकती हैं ? यह न जानकर मूर्ख-गण ही कहते हैं कि श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र वृन्दावनत्याग किए हैं ।

सर्वात्म स्वरूप पूर्णपरमानन्दप्रकाश श्रीभगवान् निरन्तर वृन्दावनमें गो गोपीगणके सहित विलास करतेहैं। ब्रह्मादि देवगण एवं वेदादि शास्त्र सकल इस भावसे ही उनको स्तव करतेहैं । अतएव राघव पण्डित द्वारा कथित श्रीकृष्ण परायणतारूप यह माणिक्य को हृदयाभरण रूपमें ग्रहण करो ।।११।।

इति चतुर्थ रत्न ।

पूर्वप्रकाशमें वर्णित परमात्मा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके अंशांशांश अवतारगणके वृत्तान्त की परमोत्सुक चित्तसे वर्णना कर रहाहूँ ।

इत्येवं वृन्दावने पूर्णतमः श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रः स्वप्रकाशः, अन्यत्राल्पप्रकाशः, तदेव पूर्णतरत्वेन; द्वारकानाथो वासु-देवो बलरामश्च पूर्णोऽपि सहप्रद्युम्नानिरुद्धादिः, तदन्यच्च पूर्णकल्पत्वेन ब्रह्म-विष्णु-शिव-महाविष्ण्वादयः; तत्र विष्णु-र्वासुदेवो यथा मथुरां गतवन्तं श्रीभगवन्तं सहस्रशिरसो-ऽनन्तस्य क्रोड़े अक्रूरोऽपश्यद्यथा-(भाः१०-३८-४६)

४। "तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥" इत्यादि ॥

तथात्रैव रुक्मिणीरभसे श्रीभगवन्तं वासुदेवं प्रति रुक्मि-ण्युवाच-(भाः१०-६०-४४) "यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्,

सम्प्रति वृन्दावनसे मथुरा गमन किसने कियाहै? उसको कहो। उत्तरमें कहतेहैं कि श्रीकृष्णचन्द्रको सर्वसम्पूर्ण प्रकाश एवं अल्प प्रकाश भेदसे पृथक् मानाजाताहै। आदियामलमें वर्णितहै— हरि पूर्वतम, पूर्णतर, पूर्ण, तिन प्रकारसे श्रेष्ठमध्यादि शब्दसे शास्त्र में सूचित होते हैं। जिसमें निखिल गुण प्रकाश होतेहैं उनको पण्डित गण पूर्णतम कहतेहैं, असर्वव्यञ्जक होनेपर पूर्णतर, एवं अल्प प्रकाश होने से पूर्ण आख्या प्राप्त होतेहैं। इस प्रकार वृन्दावनमें स्वप्रकाश श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र पूर्णतम; अन्यत्र मथुरादिमें अल्प प्रकाशहेतु पूर्णतर आख्या होताहै। द्वारकानाथ वासुदेव भी बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध प्रभृति परिवारसह पूर्ण ही हैं। तद् व्यतीत ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महाविष्णु प्रभृति पूर्णकल्पही हैं। विष्णुही वासुदेव (भाः१०-३९) अक्रूर मथुर गमनके समय श्रीभगवान् को सहस्रशीर्षारूपमें अनन्त देवके क्रोड़में दर्शन किए थे। यथा (भाः१०-३९-४६) अनन्त के क्रोड़में मेघश्यामल, पीतकौशेय वसनधारी, चतुर्भुज, शान्त नयना-नन्दकर पद्मपत्रवत् अरुणनेत्र पुरुष को उन्होंने दर्शन किया।

युष्मद्‌कथा मृड़-विरिञ्चिसभासु गीता।" इत्यत्र विष्णो-रुल्लेखो न कृतः, यदेव तत् श्रीवासुदेवः विष्णुरिति सूचि-तम्। तद्‌गुणो यथा वृहन्नारदीये—

५। "अग्रत्वादथ पूर्णत्वात् स्वयम्भुरिति कथ्यते।
हरः संसारहरणाद् विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते॥"

श्रीवासुदेवस्वरूपविष्णोर्वैभवं यथा-मथुरायां कंसवधाय गत्वा स्व-वैभवं दर्शितम्, तदेव श्रीभाः (१०-४३-१७) "मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्" इत्यादि। तथैव द्वारकायां षोड़शसहस्रस्त्रीणां गृहे षोड़श-सहस्राणि पुमांसो भूत्वा रराम, महामुनि-नारदेन दृष्टः। तदनु अर्जुनं प्रति विश्वरूपं दर्शितम्। तथा रुक्मिणीहरण-पारिजातहरणादि-महामहायुद्धे चतुर्भुजत्वं प्रकटितम्, गरुड़-वाहनश्च शङ्खचक्रगदापद्मधारी च। अतः श्रीरुद्र उवाच— (भाः४-२४-२८)

श्रीरुक्मिणी स्वानन्दसे श्रीभगवान् वासुदेव को कही थी, (भाः १०-६०-४४) हे शत्रुनाशन ! हरविरिञ्चि सभामें सत तुम्हारी कथा जिसके कर्णरन्ध्रमें प्रविष्ट नहीं हुई है,-इत्यादि वाक्यमें विष्णु का उल्लेख नहीं हैं। इससे जानाजाताहै कि वासुदेव ही विष्णुहैं। उनका गुण वृहन्नारदीय पुराणमें वर्णित है, सकलके अग्र एवं परवर्त्ती हेतु उनको स्वयम्भू, एवं संसार हरण करते हैं, अत 'हर'-एवं विभूत्व व्यापकत्व हेतु विष्णु नामसे अभिहित होतेहैं।

श्रीवासुदेव स्वरूप विष्णु का वैभव यथा,-मथुरामें कंसवध निमित्त जाकर निजवैभव प्रदर्शन किये थे (भाः१०-४६-१७) मल्लगण के लिए बज्रतुल्य, मानवगणके मध्यमें चित्त चमकप्रद रूप गुण लीलादि में सर्वश्रेष्ठ मानव, रमणीगणके निकट कामदेव स्वरूप इत्यादि।

६। "यः परं रहसः साक्षात् त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात्।
भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे॥" इत्यादि प्रमाणेन ज्ञातव्यम्— विष्णोर्वासुदेवस्य परः श्रीकृष्णचन्द्रः, विष्णुरपि वैकुण्ठेश्वरः, अतएव महाविष्णुः, तथात्र प्रमाणमाह-यदा वैकुण्ठद्वारि जयविजययोर्ब्रह्मशापो वभूव, तदा भगवता श्रीविष्णुना आज्ञप्तम्, "यदि मयि शत्रुभावं कृत्वा पतथः, तदा जन्मत्रयानन्तरं युवामहं मोचयिष्यामि" इति। अतो जयविजयौ हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपुरूपौ भूत्वा जातौ। विष्णुरपि वराह-नृसिंहरूपौ भूत्वा तौ जघान; युगान्तरे पुनस्तौ रावण-कुम्भकर्णौ भूत्वा जातौ, विष्णुरपि श्रीराम-लक्ष्मणरूपौ भूत्वा तौ जघान; जन्मान्तरे पुनस्तौ शिशुपाल-दन्तवक्ररूपौ भूत्वा जातौ, विष्णुरपि श्रीवासुदेव-वलभद्रौ

द्वारकामें १६१०८ महिषीके गृहमें १६१०८ मूर्त्तिधारणकर विहार किए थे, महर्षि नारद यह कृत्य अपने नेत्रोंसे देखे थे। इसके वाद अर्ज्जुन को विश्वरूप प्रदर्शन किए थे, रुक्मिणी हरणके समय, पारिजात हरणके समय एवं महामहा युद्धकालमें चतुर्भुज प्रकट किए थे। कभी तो गरुड़ वाहन, कभी तो शङ्खचक्रगदापद्मधारी रूपमें दर्शन दिये थे। अतएव (भाः४-२४-२८) श्रीकृष्ण वोले, प्रधान एवं जीव संज्ञ पुरुष से पर अर्थात् प्रकृति पुरुषके नियन्ता जो भगवान् वासुदेव, उनकी शरणापन्न जनही मेरा अतिशय प्रियहै। इत्यादि प्रमाणसे अवगत होताहै कि विष्णु वासुदेवसे भी श्रेष्ठ—श्रीकृष्णचन्द्र हैं। विष्णु वैकुण्ठेश्वर, अतएव महाविष्णु हैं, प्रमाण स्वरूप कहते हैं-जब वैकुण्ठ द्वारमें जयविजय के प्रति ब्रह्मशाप हुआ, तव भगवान् श्रीविष्णु ने आदेश किया,-यदि तुमदोनों मेरेप्रति शत्रुभावापन्न होकर पृथिवी में आओगे तव मैं तिनजन्मके वाद तुमदोनों को मैं उद्धार करूँगा।

भूत्वा तौ जघान । एवं जन्मत्रयानन्तरं जयविजयौ मुक्तौ वभूवतुः । अत एतत् सर्वं विष्णोर्वैभवमेव; वृन्दावनचन्द्रस्य नैतत्, यतः सर्वेषां परः श्रीकृष्णचन्द्रस्य वैभवः । अतो नारदपञ्चरात्रे "रामादयोऽवताराश्च कार्यार्थे सम्भवन्ति च" इति । अत एते सर्वे श्रीकृष्णस्यांशा विष्णुस्वरूपावतारा इति ज्ञापनियम्; यतो दिव्यवृन्दावनस्थो भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रः यथा गोलोकसंहितायाम्—

७। "ज्योतिर्मयं ब्रह्म यत्र तत्र वृन्दावनंमहत् ।
तत्रैव राधिकादेवि सर्वशक्ति नमस्कृता ।
तत्रैव भगवान् कृष्णः सर्वदेवशिरोमणिः ॥"

अतएव जयविजय हिरण्यक्ष हिरण्यकशिपु रूपमें जन्मग्रहण किए; विष्णु भी वराह एवं नृसिंह मूर्त्तिधारण कर उन दोनों को वध किये, युगान्तर में पुनर्वार वे दोनों रावण कुम्भकर्ण होकर जन्म लिए,विष्णु भी श्रीरामलक्षण रूपमें उन दोनों को वध किये, जन्मान्तरमें वे दोनों शिशुपाल दन्तवक्र हुए थे, विष्णु भी श्रीवासुदेव वलभद्र स्वरूपमें उन दोनों को वध किए थे। इसप्रकार तीन जन्मके पश्चात् जय विजय मुक्त हुये थे। अतएव दैत्यवधादि कार्य श्रीविष्णुका ही वैभव है। किन्तु वृन्दावनचन्द्रका यह कार्य नहींहैं; कारण श्रीकृष्ण चन्द्रके कार्यकलाप सर्वोपरि है। अतएव नारद पञ्चरात्रमें उक्तहै, 'रामादि अवतारगण कार्यानुरोधसे आविर्भूत होंगे।' अतएव अन्यान्य अवतारगण सकल ही श्रीकृष्णके अंश, विष्णु स्वरूप अवतार। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र किन्तु दिव्य वृन्दावन विहारी, यथा गोलोक संहितामें-यहाँपर ज्योतिर्मय ब्रह्म देदीप्यमानहै, वहाँपर महावृन्दावन अवस्थित है। उक्त स्थानमें श्रीराधिकादेवी सर्वशक्तिगणके नमस्कर-णीयाहै, वहाँपर ही श्रीभगवान्कृष्ण सर्वदेवशिरोमणिरूपमें विराज-मानहैं। अतएव महाविष्णु श्रीकृष्णका वैभव (प्राभवविलास) हैं।

अतएव महाविष्णुवैभवमेव। तत्र केचिद् वदन्ति-सर्व-मेतदस्य श्रीवृन्दावनचन्द्रस्य वैभवमेव, स एव किं न विभुः? अहो भद्रमुक्तम्, तस्यांशवैभवा विष्णुर्वासुदेवादयः, अहो यदि नैवम्, तदा कथं वासुदेवो ब्रह्मादिभिः प्रार्थितो वैकुण्ठं गन्तुम्? यथा श्रीब्रह्मोवाच–(भाः१-६-२१)

८। "भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो।
त्वमस्माभिर्विशेषार्थं तत्तथैवोपपादितम्॥"

(भाः११-६-२५-२६)

९। "शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो॥
१०। ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे।
सलोकान् लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठकिङ्करान्॥" इति।

अतः सर्वोपाधि-रहितस्य श्रीकृष्णचन्द्रस्य नैतत्, स एव दिव्यवृन्दावनेशः पूर्णरसमयः। अनन्तवैकुण्ठ–नाथास्तस्य

इस स्थलपर किसी की आपत्तिहै कि–सभी तो श्रीकृष्णवृन्दा–वनचन्द्रके वैभव हैं, वासुदेव क्या विभु नहीं हैं? उत्तर–अहो! उत्तम् कथन है। यदि ऐसा ही नहीं होगा तो क्यों ब्रह्मादि देवगण वैकुण्ठमें प्रत्यावर्त्तन करने के लिए श्रीवासुदेव से प्रार्थना किए? (भाः११-६-२१) श्रीब्रह्माजी बोले–हे विश्वात्मन्! पहले हमसव धरा के भार हरण के लिए आपके चरणों में प्रार्थना किए थे, आप भी उक्तकार्य को सुसमाहित किए। यदुवंशमें अवतीर्ण होकर आप १२५ वत्सर अतिवाहित किए। अतएव यदि इच्छा हो तब अधुना परम धाममें (प्रपञ्चके अगोचर द्वारकाके प्रकाश विशेष में श्रीकृष्ण स्वरूप में एवं वैकुण्ठ श्वेतद्वीपादिमें) प्रवेश करें; (श्रीविष्णु स्वरूपमें) लोक सहित लोक पालगणको एवं विविध वैकुण्ठनाथ स्वरूपमें वैकुण्ठ किङ्कर हमसवको पालन करें॥

किङ्कराः, यथा ब्रह्मसंहितायाम्-(५-४३)

११। "गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य,
देवी-महेश-हरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभाव-निचया विहिताश्च येन,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥"

तथा गोविन्दवृन्दावने बलभद्रं प्रति श्रीकृष्ण उवाच—

१२। "अहमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः।
सदाशिव-महाविष्णु-ब्रह्मरुद्रादि-कारकः।
नराकृतिर्नित्यरूपी वंशीवाद्यप्रियः सदा ॥"

अतएव तेषां सर्वेषां परः श्रीकृष्णचन्द्र एव। यथा ब्रह्म-संहितायां ब्रह्मणः स्तुतिः-(५-४१)

१३। "माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते,
त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना।
सत्त्वावलम्बि-परसत्त्वविशुद्धसत्त्वं,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥" इति।

अतएव सर्वोपाधि रहित श्रीकृष्णचन्द्रके ये सब कार्य नहीं है, आप दिव्यवृन्दावननाथ, पूर्णरसमय, एवं अनन्त वैकुण्ठनाथगण उनके ही किङ्कर हैं। प्रमाण—ब्रह्मसंहिताम् (५-४३) गोलोक नामक निज धामके नीचे यथाक्रम से हरि, महेश, एवं देवी धामहैं; उस उस धाममें जो विविध प्रभावराजि सन्निवेशित किए हैं, आदि पुरुष उन गोविन्दका मैं भजन करूँ। गोविन्दवृन्दावनमें बलभद्र को श्रीकृष्ण कहे थे—मैं परमात्मा, परब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, एवं सदाशिव महा-विष्णु ब्रह्मरुद्र प्रभृति के नियन्ता हूँ। मैं सदाकाल निराकार, नित्य-स्वरूप एवं वंशीवाद्य प्रिय हूँ। अतएव सदाशिवादि सबके परतत्त्व

तत्र सत्त्वावलम्बो महाविष्णुः, परसत्त्वो वासुदेवः, विशुद्ध-सत्त्वो गोविन्दः, स एव श्रीकृष्णचन्द्रः, तदिति, तमोरजोभ्यां सम्बलितं सत्त्वं अस्मिन्नस्तीति सत्त्वावलम्बो विष्णुर्वासुदेव एव; विष्णुना यथा सृष्टिं कर्त्तुं माया विस्तारिता, अतो विष्णुमायारुद्धा सृष्टिः, लक्ष्मी-सरस्वत्यादि-परिवार इति रजोगुणः। तमसा नानादैत्यसंहारः कृतः, यथा दैत्यारि-र्जनार्दनो मधुसूदन इति नाम्ना ज्ञातव्यम्। तदेव वासु-देवश्च रजसा कृत-पुर्य्यां द्वारकायां षोड़शसहस्रमहिषीषु षट्-पञ्चाशत्कोटिस्ववंशो विस्तारितः। तमसा कंस-नरकाद्य-सुरवधः कृतः, सत्त्वेन पृथिवीं पालयति, अतः सत्त्वगुणो विष्णुः, एवं सत्त्वावलम्बी महाविष्णुर्यथा ब्रह्मसंहितायाम्—
(५–१३–१६)

१४। "हैमान्यण्डानि जातानि महाभूतावृतानि तु।
प्रत्यण्डमेवमेकांशादेकांशाद्विशति स्वयम्।
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा महाविष्णुः सनातनः॥

श्रीकृष्ण ही हैं। (ब्रःसंः ५–४१) त्रैगुण्य विषयक वेदमें जिसका विषय विस्ताररूपसे वर्णितहै, उस वहिरङ्गा जिसकी माया शत शत ब्रह्माण्ड को प्रकाश करतीहै, अथच जो मायास्पर्श रहित, स्वरूपानुबन्धि विशुद्ध सत्त्वात्मक हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करूँ। इस श्लोक में सत्त्वावलम्बी महाविष्णु परसत्त्व वसुदेव, विशुद्धसत्त्व-गोविन्द, एवं आपही श्रीकृष्णचन्द्र हैं, सुतरां तमोरजोयुक्त सत्त्वगुण हैं इसलिए सत्त्वावलम्बी विष्णु वासुदेव हैं। सत्त्वावलम्बी विष्णु किस प्रकार हैं, उसको कहता हूँ। आपने सृष्टि करने के लिए माया का विस्तार किया, अतएव विष्णुमायाद्वारा सृष्टि आरब्ध हुई हैं।

१५। वामाङ्गादसृजद्विष्णुं दक्षिणाङ्गात् प्रजापतिम्।
ज्योतिर्लिङ्गमयं शम्भुं कूर्चदेशादवासृजत्॥
१६। अहङ्कारात्मकं विश्वं तस्मादेतद्व्यजायत॥"

इति रजोगुणः, सत्त्वेन सर्वमेतद्वहत्येव, अतो रजोगुण-सम्बलित-सत्त्वो महाविष्णुः, अतएव विशुद्ध-सत्त्वः श्रीकृष्णचन्द्रः; तथा हि ब्रह्मसंहितायां-(५-४७-४८)"यः कारणार्णवजले भजति" इत्यादि; "यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य" इत्यादि।

परसत्त्वो वासुदेवो यथा नारदपञ्चरात्रे—

१७। "दिव्यातिदिव्य-श्रीदेहं कालमायाद्यगोचरम्।
श्वेतद्वीपेश्वरं पूर्णं वासुदेवं चतुर्भुजं॥" इति

लक्ष्मी सरस्वती प्रभृति उनके परिवार हैं, इससे रजोगुण स्पर्शता प्रदर्शित हुई। तमोगुणावलम्बनसे अनेक दैत्य वध किए हैं, दैत्यारि, जनार्दन; मधुसुदन प्रभृति नामावलिही इस उक्ति का यथार्थ प्रमाण हैं. वसुदेव रजोगुणसे रचित द्वारका पुरीमें सोलह हजार महिषी द्वारा ५६ कोटि वंशविस्तार किए थे: तमोगुण द्वारा कंसनरकादि असुरवध किए हैं। एवं सत्त्वगुणसे पृथिवीका पालन किए हैं, अतएव सत्त्वगुण प्रधान-विष्णु हैं। सत्त्वावलम्बी महाविष्णु हैं, (ब्रःसं: ५-१३-१६) सकर्षणाख्य पुरुष का जो बीज प्रकृति में निहित हुआ था वह प्रथमतः सूक्ष्मभूत रूपमें परिणत होकर अनन्तर उनके रोमविवरमें अन्तर्गत होकर स्वर्णमय अण्डावलि रूपमें प्रकाशित होतेहैं। यहसव अपञ्चीकृतहै, अर्थात् परस्पर अमिश्रित महाभूत पञ्चक द्वारा आवृत होतेहैं। यह सहस्रशीर्ष विश्वात्मा, नित्यरूपी महाविष्णु एकैकांश·में (पृथक् पृथक् स्वरूपमें) प्रत्येक ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट होतेहैं। यह महाविष्णु ही निजवामाङ्गसे पालनकर्त्ता विष्णु; दक्षिणाङ्गसे हिरण्यगर्भ प्रजा-

विशुद्धसत्त्वो गोविन्दो यथा शक्रस्तुतिः-(भाः१०-२७-४)

१८। "सत्त्वं विशुद्धं तव धाम शान्तं,
तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो,
न विद्यते तेऽग्रहणानुन्बधः ।" इत्यादि ।

तथा वासुदेवोपनिषदि—

१९। "यद्रूपमद्वयं ब्रह्म मध्याद्यन्त-विवर्जितम् ।
स्वप्रभं सच्चिदानन्दं भक्त्या जानाति चाव्ययम् ॥"

तथा ब्रह्मसंहितायाम्—(५-४१)

२०। "माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते,
त्रैगुण्य–तद्विषयवेदवितायमाना ।
सत्त्वावलम्बि–परसत्त्व–विशुद्धसत्त्वं,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥"

पति, एवं भ्रूद्वयके मध्यदेशसे ज्योतिर्लिङ्गात्मक शम्भु की सृष्टि करते हैं। इस शम्भुसे अहङ्कारात्मक विश्व उत्पन्न हुआ है। सृष्टिकार्य रजोगुण का व्यापार है, सत्त्वगुणद्वारा विश्वब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं। अतएव रजोगुण सम्बलित सत्त्वगुणी महाविष्णु, एवं एकमात्र विशुद्धसत्त्व श्रीकृष्णचन्द्रही हैं। (ब्रःसंः५-४७-४८) जिनके रोमकूप में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड वर्त्तमानहैं, जो कारण समुद्रजलमें योगनिद्रा को आश्रय कर हैं, जिनके एकमात्र निःश्वास काल को अवलम्बन कर लोमविवरजात ब्रह्माण्डावलिके पालन कर्त्ता स्वाधिकारमें नियुक्त रहते हैं, उक्त महाविष्णु भी जिनके कलाविशेषहैं, उन गोविन्द का मैं भजन करता हूँ। ।

परसत्त्व वासुदेव हैं, प्रमाण, नारद पञ्चरात्रमें, दिव्यातिदिव्य

तथा नारदपञ्चरात्रे—

२१। "द्विभूजं तु घनश्यामं किशोरं वनमालिनम् ।
दिव्याभरणदिव्याङ्गं गोपकन्यागणावृतम् ॥

२२। दयितं प्रेमभक्तानामद्वैतं ब्रह्मवादिनाम् ।
मीनकूर्मादयो यस्य स्वांशांशाः सर्वदेवताः ॥" इत्यादि ।

ततः सच्चिदानन्दस्वरूपः विशुद्धसत्त्वो गोविन्दः, स एव श्रीकृष्णचन्द्रः स्वप्रकाशो दिव्यवृन्दावनेशो नित्यवृन्दावने प्रकाशोऽभूदिति वेदवेदान्तादिभिर्निर्दिष्टम् ।

तथा हि ब्रह्मसंहितायाम्—(५-१)

२३। "ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारण-कारणम् ॥" इति ।

परमसुन्दर विग्रहधारी, काल माया प्रभृति के अगोचर, चतुर्भुज, श्वेतद्वीपपति पूर्ण वासुदेवका भजन करता हूँ। विशुद्ध सत्त्व, गोविन्द हैं, प्रमाण, इन्द्रस्तुति में (भा:१०-२७-४) हे प्रभो ! आपका स्वरूप विशुद्ध सत्त्वमय, (चिदानन्दस्वरूप) शान्त (क्षोभशून्य) तपोमय (ज्ञानस्वरूप) एवं रजस्तमोगुणलेशहीन है, सुतरां मायामय यहगुण प्रवाह संसार आपका नहीं हो सकताहैं। वासुदेवोपनिषदमें उक्तहै- अद्वितीय (स्वजातीय विजातीय भेद रहित, अथच स्वगतभेदयुक्त) ब्रह्म, अविनाशी, आदि मध्यावसान रहित, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्द-मय एवं अव्ययस्वरूप, भक्तिद्वारा ज्ञात होतेहैं। (ब्र:सं:५-४१, नारद पञ्चरात्रमें कथित है-आप द्विभुज, घनश्याम, किशोरवयस्क, वन-मालाधारी दिव्याभरण भूषित, उद्भाषिताङ्ग, गोपकन्यागण द्वारा परिवेष्टित, प्रेमभक्तगणके दयित ब्रह्मवादिगणके निकट अद्वैत तत्त्व हैं. उनके स्वांशके अंशमें मत्स्य कूर्मादि सकल अवतार होतेहैं। सुतरां सच्चिदानन्दघन, विशुद्धसत्त्व गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र स्वप्रकाश

२। किन्तन श्रुतं तल्लक्षणम्, यद्यङ्ग-चिह्नेन जनदृग्-गोचरीभवति, तदा प्रतीयते, तत्र श्रवणाद्दर्शनं श्रेष्ठम्,दर्शनात् स्पर्शनमित्यादि, तदेव पादचिह्नेन ज्ञायते, यथा पद्मपुराणे नारदं प्रति ब्रह्मोवाच—

२४। "शृणु नारद वक्ष्यामि पादयोश्चिह्नलक्षणम् ।
भगवत्कृष्णचन्द्रस्य ह्यानन्दैकरसस्य च ॥

२५। अवतारा ह्यसंख्याताः कथिता मे तवाग्रतः ।
परं सम्यक् प्रवक्ष्यामि कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥

२६। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमृषीणाञ्च तथैव च ।
आविर्भूतस्तु भगवान् स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥

२७। यैरेव ज्ञायते देवो भगवान् भक्तवत्सलः ।
तान्यहं वेद नान्योऽस्ति सर्वमेतन्मयोदितम् ॥

२८। षोड़शैव तु चिह्नानि मया दृष्टानि तत्पदे ।
दक्षिणे चाष्टचिह्नानि इतरे सप्त एव च ॥

हैं, दिव्यवृन्दावननाथ नित्यही वृन्दावनमें प्रकाशमानहैं, यहही वेद वेदान्तादिमें निर्दिष्टहैं (ब्र:सं:५-१) परमकृष्ण इत्यादि ॥१॥

आपत्ति-उनका लक्षण सब सुना, किन्तु यदि अङ्गचिह्नके साथ आप लोक नयन गोचरीभूत होतेहैं, तबही विश्वास होगा, उससे भी श्रवणसे दर्शन, एवं दर्शनसे स्पर्शन श्रेष्ठहैं ।

उत्तर-चरणचिह्न द्वारा उनको जानाजाताहै । यथा पद्मपुराण में नारदके प्रति ब्रह्माका उपदेश । हे नारद ! आनन्दैकरस भगवान् श्रीकृष्णके चरणयुगलके चिह्नसकल कहताहूँ, सुनो । प्रथम कहा हूँ कि-उनके असंख्य अवतार हैं, किन्तु यह सार वाक्यहै कि-श्रीकृष्णही स्वयं (अन्यनिरपेक्ष) भगवान् हैं, देव, एवं ऋषियों के कार्यसिद्धि हेतु एवं निज भक्तवृन्दके प्रीतिविधान निमित्त भगवान् धरातल में

२९। ध्वजा पद्मं तथा वज्रमङ्कुशो यव एव च ।
स्वस्तिकं चोर्द्ध्वरेखा च अष्टकोणं तथैव च ॥

३०। सप्तान्यानि प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं वैष्णवोत्तम ।
इन्द्रचापं त्रिकोणञ्च कलसञ्चार्द्धचन्द्रकम् ॥

३१। अम्बरं मत्स्यचिह्नञ्च गोष्पदं सप्तमं स्मृतम् ।
जम्बूफल-समाकारं दृश्यते यत्र कुत्रचित् ॥

३२। अङ्कान्येतानि भो विद्वन् दृश्यते च यदा कदा ।
कृष्णाख्यं परमं ब्रह्म भुवि जातं न संशयः ॥

३३। एतानि वत्स चिह्नानि दृष्टानि च श्रूतानि च ।
वेदाग्रकथितान्येव पुनः किं कथयाम्यहम् ॥"

पुराणान्तरे शङ्खचक्रातपत्रादिचिह्नत्रयञ्च, यथा आदि-वाराहे मथुरामण्डल-माहात्म्ये—

३४। "यत्र कृष्णेन सञ्चरितं क्रीड़ितञ्च यथासुखम् ।
चक्राङ्कितपदा तेन स्थाने ब्रह्ममये शुभे ॥"

अवतीर्ण होते हैं। लीलाविनोदी भक्त वत्सल भगवान् को जानने का लक्षण क्याहै? उसको मैं ही जानताहूँ, और कोई नहीं जानता है। हे वैष्णवोत्तम! मैं उनके चरणतलमें सोलह चिह्न देखा हूँ। दक्षिणचरणमें ध्वज, पद्म, वज्र, अङ्कुश, यव, स्वस्तिक, ऊर्द्धरेखा, एवं अष्टकोण, यह आठचिह्न है, एवं वामचरणमें इन्द्रधनु, त्रिकोण, कलस, अर्द्धचन्द्रविन्दु, मत्स्य एवं गोष्पद, यह सात चिह्न है, कुल-मिलाकर १५ चिह्न हुये, जम्बूफलाकार चिह्नको लेकर षोड़सचिह्न होते हैं। हे देवर्षिवर्य! ये सब चिह्न जबजिसमें देखेजाते हैं, तब ही उनको परमब्रह्मकृष्ण पृथिवी में अवतीर्ण हैं, जानना होगा। इसमें कोई संशय नहींहै। हे वत्स! यह सब चिह्नको मैंने देखा है, सुना है, एवं उपनिषद्में कथित भी हैं। अधिक और क्या कहूँ।

यथा क्रमदीपिकायाम्– (३-१५) "मत्स्याङ्कुशारिदर–केतुयवाब्जवज्र,–संलक्षितारुणतराङ्घ्रितलाभिरामम् ॥"
अरिदरं चक्र-शङ्खम् । इति मत्स्यध्वजातपत्रश्चेतिरूपेण चिह्नितं चरणद्वयमिति । एतच्चिह्नत्रयेणोनविंशति-चिह्नानि श्रीभगवच्चरणकमले निर्दिष्टानीति ।

३५ । "द्वयं वाथ त्रयं वाथ चत्वारि पञ्च एव च ।
दृश्यते वैष्णवश्रेष्ठ अवतारे कथञ्चन ॥"

अथापरञ्च वत्सहरणे महाश्चर्यं दृष्ट्वा ब्रह्माह-भाः१०-१४-१८

३६ । "अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित–
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता–
स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥"

इत्यादि श्रवण-दर्शनानुध्यान-नानाप्रमाणेनैव ज्ञापनीयम् ॥२॥

अन्य पुराणमें उक्तहै–शङ्ख, चक्र, छत्र अतिरिक्त चिह्नभी है, विष्णु पुराणमें उक्तहै–ब्रह्ममय श्रीकृष्ण जिस शुभधाममें महासुखसे चन्द्र-चिह्नित चरणद्वारा सञ्चरण एवं क्रीड़ादि किए हैं। क्रमदीपिकामें मत्स्य, अङ्कुश, चक्र, शङ्ख, ध्वज, यव, पद्म, वज्र प्रभृति चिह्नसे लक्षित अरुण कर चरण तलसे जो अतिरमणीय हुये है। एवं मत्स्य, ध्वज, छत्र चिह्नित चरणद्वय–इत्यादि वाक्यमें चक्र, शङ्ख, छत्र ये तीन लेकर श्रीभगवानके चरणों में कुल १६ चिह्न हैं, इसके मध्यमें २, ३, ४, ५, किसी किसी अवतार में देखने में आतेहैं उपरन्तु वत्स हरण में महाश्चर्य व्यापार को देखकर ब्रह्माका कथन–(भाः१०–१४–१८) आपसे भिन्न यह विश्वमाया का कार्य है, इसको आपने ही दिखलाया है। उसका निदर्शन देताहूँ–वत्स वालक हरणके समय आप स्वरूपतः एक थे, हरणके वाद, वत्स, वालक, वेणुवेत्रादि सवकुछ

३। अथ वासुदेवादयो ब्रह्मादयो मत्स्यकूर्मादयः क इत्युच्यताम्–तदेव भागांशकलाशक्त्यावेशत्वेन निरूपिताः। यथा श्रीकृष्णयामले—

३७। "भागस्त्वर्द्धं तदर्द्धञ्च अंश इत्यभिधीयते।
तदर्द्धं कुलमाख्यातं कला तस्यार्द्धमुच्यते॥

३८। तदर्द्धं शक्तिराख्याता आवेशः स्यात्तदर्द्धकः।
एवं चतुःषष्टिभागैरवताराः परात्मनः॥"

तन्निरूपणमाह-तदर्द्धभागो राधा, तद्यथा पद्मपुराणे—

३९। "आद्या शक्तिः स्वयं राधा मुकुन्दार्द्धाङ्गसङ्गता।
सुशीला सुगतिः साध्वी वृन्दावन-विलासिनी॥"

तथा सम्मोहनतन्त्रे प्रथम-पटले—

४०। "पूर्णानन्द-स्वरूपं यत्तन्नित्यं नेतरत् पुनः।
तदानन्दमयी राधा तदानन्दमयो हरिः॥

आपहि हुए, अनन्तर मेरेसाथ निखिल तत्त्वादि द्वारा उपासित होकर तावत् संख्यक चतुर्भुज मूर्त्तिभी हुए, एवं तद् संख्यक ब्रह्माण्ड काभी प्रदर्शन किये, अतएव अपरिमित परिपूर्ण आप हीहैं आपही केवल अवशेष रूपमें दृष्ट होतेहैं। इत्यादि दर्शन, श्रवण, अनुध्यान प्रभृति नानाप्रमाणसे जानना होगा॥२॥

सम्प्रति वासुदेवादि, ब्रह्मादि एवं मत्स्यकूर्मादि कौन हैं? अर्थात् उनके स्वरूप कहो। उससव श्रीकृष्णके भाग, अंश, कला, शक्ति एवं आवेश रूपमें निर्दिष्ट हुये हैं। यथा श्रीकृष्ण यामलमें–भाग मूलका आधा, उसका आधाअंशहै, उसका आधाकुल, कुलका–आधा कला, कलाका आधाशक्ति हैं, शक्तिका आधा आवेशहैं। इस प्रकार एक भागके ६४ भागसे भी अवतार होसकता हैं। सम्प्रति निरूपण किया जारहा हैं, श्रीराधा श्रीकृष्णका अर्द्ध भागहै, राधाही

४१। न भौतिको देहवन्धस्तयोरानन्दरूपयोः।
एकं ब्रह्म द्विधाभूतं योगिनां ज्ञानहेतवे ॥
४२। दाहकेन यथा वह्नौ वह्नि प्राप्य विजृम्भते।
शक्तिशक्तिमतोरैक्यं यथा ज्ञेयं मनीषिभिः ॥"

तथार्द्धाङ्गात् समुत्पन्ना अर्द्धाङ्गस्वरूपा राधा। यथा गोविन्दवृन्दावने वलरामं प्रति श्रीकृष्ण उवाच—

४३। "शृणुष्व कथयिष्यामि वलराम यथा मम।
त्रिभङ्गत्वञ्च तां वंशीं गृहीत्वा हृष्टमानसः ॥
४४। दिव्यनीपाङ्घ्रिपतले मणिवद्धे महाप्रभे।
सुवर्णवेदिकामध्ये निर्मले प्रतिनिर्मले ॥

आद्याशक्ति स्वयं राधा मुकुन्दके अर्द्धाङ्गकी संप्राप्ति की है, राधा, सुशीला, सुगति, साध्वी एवं वृन्दावन विलासिनी हैं, सम्मोहन तन्त्र में—जो पूर्णानन्द स्वरूपहै, वह ही नित्यहै, खण्ड आनन्द किन्तु अनित्य हैं। राधाभी पूर्णानन्दमयी एवं कृष्णभी पूर्णानन्दमय हैं। आनन्द स्वरूप इसयुगल का भौतिक देहवन्धन नहीं है। योगिगण की ज्ञान सिद्धिके लिए एक ब्रह्मही द्विधाभुत हुए हैं। अग्निमें इन्धन संयुक्त करने पर जिसप्रकार अग्निको प्राप्त करही प्रकाशित होतीहै अर्थात् (काष्ठ के मध्यमें अन्तर्निहित अग्निभी जिसप्रकार अग्निके साहाय्यसे ही आत्मप्रकाश करती है) शक्ति शक्तिमानका अभेदत्व जैसे मनीषि गण जानते हैं, उसीप्रकार युगलकिशोर अभिन्नात्मा होनेपरभी श्री-कृष्णके अर्द्धाङ्गसे श्रीराधा समुत्पन्नहै, अतएव श्रीमतीराधा अर्द्धाङ्ग स्वरूपा हैं।

गोविन्द वृन्दावनमें कथितहै, वृन्दावनमें श्रीकृष्ण वलराम को कहते हैं-हे वलराम ! मेरा त्रिभङ्गीत्व की कथा कहताहूँ श्रवण करो। मैं वंशी लेकर आनन्दित मनमें दिव्य कदम्बवृक्ष तलमें मणिनिवद्ध, महोज्ज्वल महानिर्म्मल स्वर्ण वेदिका मध्यमें स्वयं स्वयंको देखकर

४५। संपश्यन्नात्मनात्मानं स्वयमेव विमोहितः।
एतस्मिन्नेव समये यातो मे हृदये रसः॥
४६। शृङ्गाराख्यः सुखमयः सर्वलोकैकमोहनः।
आत्मानं रन्तुमिच्छामि नारीत्वं मनसेप्सितम्॥
४७। इति सञ्चिन्तिते चित्ते मनस्तत्र स्वतां गतम्।
रसादानन्द आनन्दादनुभावविबोधिनी।
स्वयमात्मा द्विधाभूता परमानन्दरूपिणी॥
४८। रसस्वरूपिणी देवी वामांशेन विनिर्गता।
विद्युत्पुञ्जनिभा गौरी दिव्याभरण-भूषिता।
कृष्णार्द्धस्वरूपा राधा सर्वशक्तिमयी स्मृता॥" इत्यादि।
तथा श्रीकृष्णयामले चतुर्दशाधिकशततमपटले श्रीवासु-
देवं प्रति त्रिपुरोवाच—
४९। "अकारेणोच्यते कृष्ण उकारेणैव राधिका।
कलयात्मा कलाभिज्ञा वासनावरविग्रहात्।
विन्दुवरवं परं तत्त्वमनयोः पादचारणे॥"

स्वयंही विमोहित होगया था, इस समय मेरे हृदयमें एक सुखमय सर्वलोकैक मोहन शृङ्गाराख्य रस आविर्भूत हुआ। स्वयं को रमण करने की इच्छा होनेपर मनमें नारीत्व प्राप्तिकी भी लिप्सा हुई। चित्तमें इसप्रकार चिन्ता करते करते मन उस समय आत्मस्थ होगया। रससे आनन्द, आनन्दसे अनुभाव विज्ञापिका पुनर्वार परमानन्द स्वरूपा होकर आत्मा द्विधाभूत हुआ। उस समय वामांश से विद्युत् पुञ्जतुल्या दिव्यालङ्कार शोभिता गौराङ्गिणी रसस्वरूपिणी देवी विनिर्गत हुई। इसप्रकार श्रीकृष्णार्द्धस्वरूपा सर्वशक्तिमयी श्रीराधातत्त्व निर्दिष्ट हुआ।

तथा गोविन्दवृन्दावने (२य-पटले) वलभद्रं प्रति श्रीकृष्ण उवाच—

५०। "त्रितत्त्वरूपिणी सा तु राधिका मम वल्लभा।
प्रकृतेः पर एवाहं सापि शक्तिस्वरूपिणी ॥

५१। प्रकाशत्रयरूपेण निर्गुणाकारचित्परः।
एवं सर्वत्र सर्वेशः सापि सर्वेश्वरेश्वरा।
क्रियारूपेण सा प्रोक्ता द्वयोः समरसात्मिका ॥"

इत्येवं श्रीकृष्णार्द्धभागो राधा सर्वशक्तिस्वरूपा च। तथा सम्मोहनतन्त्रे नारदस्तुतिः—

५२। "का त्वमाश्चर्यविभवे ब्रह्मरुद्रादि–दुर्गमे।
योगिन्द्राणां ध्यानपथं न त्वं स्पृशसि कुत्रचित् ॥

५३। इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिस्तथेशितुः।
तवांशमात्रमित्येवमणीयांशः प्रवर्त्तते ॥

श्रीकृष्णयामले में भी उसप्रकार चतर्दशाधिक शतपटलमें श्री-वासुदेवके प्रति त्रिपुर का कथन है-अकारसे कृष्ण, उकार श्रीराधिका, विन्दुवत्त्व परमतत्त्वहै दोनों को लीला प्रकाशकहैं। उसप्रकार गोविन्द वृन्दावनमें उक्तहै–बलभद्रके प्रति कृष्णने कहा, त्रितत्त्व रूपिणी श्री–राधा मेरे प्रियाहै, मैं प्रकृतिके अतीत हूँ, राधिका मेरी शक्तिस्वरू-पिणी है, प्रकाशत्रय रूपसे निर्गुणाकार चित्पर हैं। यह कथा सकल ईश्वर सम्मतहैं, और राधा सर्वेश्वरेश्वरी हैं। क्रिया स्वरूपा उनको कही जातीहैं, वह राधा समरसात्मिकाहै। इस प्रकार श्रीराधा कृष्ण के अर्द्ध भागस्वरूपा एवं सर्वशक्ति स्वरूपा हैं।

सम्मोहन तन्त्रमें नारदस्तुतिमें उक्तहै,-ब्रह्मरुद्रादिके भी दुर्ज्ञेय आश्चर्य शक्तिमयी तुम कौन हो? तुम कभी भी योगीन्द्रगण के ध्यानमार्ग को स्पर्श नहीं करतीहो, ईश्वर की इच्छाज्ञान,क्रियाशक्ति,

५४। या या विभूतयोऽचिन्त्याः शक्तयश्चारुमायिनः।
परेशस्य महाविष्णोस्ताः सर्वास्ते कलाकलाः॥"

इति सर्वाः शक्तयः श्रीराधायाः विद्यन्ते ॥३॥

४। अथ केनचिदुक्तम्—आद्याशक्तिर्भगवती दुर्गेति सर्वत्र ख्यातिः, कथमन्या? तदत्रावधीयतां वराह-संहितायां—(२-३१,३२,७८,७९) सप्तावरणविवरणे वृन्दावनस्थान-निरूपणे—

५५। "तत्रोपरि च माणिक्यस्वर्ण सिंहासने स्थितम्।
अष्टादलारुणाम्भोजं तत्रैव सुखनिर्मितम्॥

५६: गोविन्दस्य प्रियं स्थानं किमस्य महिमोच्यते।
श्रीगोविन्दं तु तत्रस्थं वल्लवीवृन्दवल्लभम्॥

५७। तत्स्पर्शगन्धपुष्पादि-नानासौरभसन्निभम्॥

५८। तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका तस्य वल्लभा।
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्या त्रिगुणात्मिकाः॥"

तुम्हारे अंशमात्रहैं, अतएव अतिसूक्ष्म (अल्प) अंशमात्रही कार्यतः प्रवृत्त होताहै। महामायावी महाविष्णु परमेश्वर की जोसब अचिन्त्य विभूति एवं शक्ति हैं, वे सबही तुम्हारी कला की कलाहै, अतएव सकल शक्ति ही श्रीराधिकामें विद्यमान् हैं॥३॥

इसस्थलमें किसी की आपत्ति इसप्रकार है,—सर्वत्र प्रसिद्धहै कि आद्याशक्ति भगवती दुर्गाही है, किन्तु उपरोक्त सिद्धान्तसे अन्य(राधा) आद्याशक्ति कैसे हुई? उत्तर,—तब मनोयोग से सुनो! वराहसंहिता के सप्तावरण विवरणमें वृन्दावनस्थान निरूपणमें कथित है, उसके उपरिभागमें माणिक्य जटित स्वर्णसिंहासन में श्रीगोविन्दका प्रियस्थान है, उसकी महिमा कही नहीं जाती, उसमें अधिष्ठित हैं, श्रीगोविन्द आप गोपीजन वल्लभ हैं, उनके स्पर्शगन्धसे ही पुष्पादि के सौरभ

सर्वशक्तिः श्रीभगवता कृष्णेन राधायामारोपिता, अभेदत्वात् । स्वयं निर्विण्णः परमरसमयः परमानन्दस्वरूपः, निर्गुणः प्रकृतेः परो नित्यप्रकाशस्तथापि राधायाश्चाभेदत्वात्, तस्मिन् भगवति सर्वशक्तित्वं सगुणत्वं प्राकृतत्त्वं निरूपितम् ॥४॥

५। सर्वशक्तिर्यथा—क्रियाशक्तिरिच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति त्रिधा । तत्र क्रियाशक्तिर्यथा—ब्रह्म-विष्णु-महेश-महाविष्णु-नारायणादयः । यथा (भाः२-५-१८)

५९। "सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।
स्थिति-स्वर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥

तथा ब्रह्मवैवर्त्ते—

६०। "एवं प्रत्यण्डकं ब्रह्मा कोऽहं जानामि किं विभो ।
रजोगुण-प्रभावोऽहं सृजाम्येतत् पुनः पुनः ॥

प्रभृति होताहै, उनके प्रेयसी एवं वल्लभा श्रीराधाही आद्या प्रकृति हैं, दुर्गादि त्रिगुणात्मिका शक्तिगण उनकी कला के कोटि कोटि अंशस्वरूपा है ।

श्रीभगवान् कृष्ण सर्वशक्ति श्रीराधामें आरोपण किए हैं, कारण श्रीराधाकृष्ण अभिन्न हैं । स्वयं निर्विण्ण, परमरसमय, परमानन्दस्वरूप, निर्गुण, प्रकृति अतीत, नित्यप्रकाश होनेपर भी श्रीराधा के साथ अभेद होनेफर उक्त भगवान् में भी सर्वशक्तित्व, सगुणत्व, एवं प्राकृतत्त्व निरूपित हुआ हैं ॥४॥

सर्वशक्ति कहने पर क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति यह तिन शक्ति का वोध होता है, तन्मध्ये क्रियाशक्ति यथा-ब्रह्मा विष्णु महेश्वर, महाविष्णु नारायण प्रभृति । (भाः२-५-१८) वह विभु निर्गुण, किन्तु माया द्वारा सृष्टि स्थिति लय निमित्त सत्त्व, रजः, तमो

६१। सत्त्वस्थो भगवान् विष्णुः पाति सर्वं चराचरम् ।
रुद्ररूपी च कल्पान्ते संहरत्येतदेव हि ॥
६२। एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नित्यं चानित्यवन्मुने ॥"

महाविष्णुर्यथा ब्रह्मसंहितायाम् (५-१५,१६)

६३। "सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा महाविष्णुः सनातनः ।
वामाङ्गादसृजद्विष्णुं दक्षिणाङ्गात् प्रजापतिम् ॥
६४। ज्योतिर्लिङ्गमयं शम्भुं कूर्च्चदेशादवासृजत् ।
अहङ्कारात्मकं विश्वं तस्मादेतद्व्यजायत ॥"

नारायणो यथा द्रुमिल उवाच (भाः११-४-३)

६५। "भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधान,-मवाप नारायण आदिदेवः ॥"

अयमेव महाविष्णुः श्रीकृष्णस्य कला; यथा (ब्रःसंः५-४८)

"विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि" इति ।

नामक गुणत्रयको ग्रहण करते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तमें -हे प्रभो ! इस प्रकार प्रतिब्रह्माण्ड का संस्थान, को मैं ब्रह्मा कैसे जान सकताहूँ ? रजोगुण स्वभावके हेतु इस ब्रह्माण्डका पुनः पुनः सृजन करता रहता हूँ। सत्त्वगुणमय भगवान् विष्णु निखिल ब्रह्माण्ड का पालन करते हैं, और कल्पक्षयमें रुद्ररूपमें संहार करतेहैं। इसप्रकार नित्यकाल चक्र प्रवर्त्तित होनेपरभी अनित्यवत् होताहै। महाविष्णु यथा-(ब्रःसं ५-१५) सहस्रशीर्षा विश्वात्मा सनातन महाविष्णु वामाङ्गसे विष्णु को एवं दक्षिणाङ्गसे प्रजापति हिरण्यगर्भ को एवं ज्योतिर्लिङ्गमय शम्भु को भ्रूयुगल के मध्यसे सृजन कियेहैं। यह शम्भुसे ही अहङ्कारात्मक विश्व उत्पन्न हुआहै। नारायण यथा-(भाः०१-४-३) द्रुमिल

आदिदेवो गोविन्दः–इति क्रियाशक्तिः । अथेच्छाशक्ति-र्यथा ब्रह्मसंहितायाम्–(५-४४)

६६ । "सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका,
छायेव यस्य भुवनानि विभर्त्ति दुर्गा ।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥"

अथ श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु श्रीभगवानुवाच–(९-१०) "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।" इति इच्छा–शक्तिः श्रीभगवती दुर्गा । अथ ज्ञानशक्तिर्यथा श्रीभगवद-वधानमात्रेण सृष्टेरुद्भवः प्रभवः प्रलयश्च भवति, यथा श्रुते–र्वाक्यवृत्तौ (१९) अनापन्नविकारः सन्नयस्कान्तवदेव यः । बुद्ध्यादींश्चालयन् प्रत्यक् इत्यादि । अयस्कान्तसन्निधाने लौहं च चलति यथा" अयस्कान्तो न किञ्चित् करोति, न किञ्चित् पालयति, न किञ्चित् संहरति च–इत्येवं ज्ञानशक्तिः ॥५॥

कहेहैं–स्वसृष्ट क्षित्यादि पञ्चभूत द्वारा ब्रह्माण्डरूप पुरीनिर्म्माण कर अंशरूपमें उसमें प्रवेश कर आदिदेव नारायण पुरुषसंज्ञा प्राप्त करते हैं । यह महाविष्णु श्रीकृष्णके कला हैं, यथा (ब्र:सं:५-५८) महा-विष्णु भी जिनकी कला विशेष हैं, उनआदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करूँ ।

पूर्वउद्धृत (भा:११-४-३) श्लोकमें आदिदेव शब्दसे गोविन्दको जानना होगा, इति क्रियाशक्ति । इच्छाशक्ति की विवृति–यथा (ब्र: सं:५-४४) जिनकी सृष्टि स्थिति लयकारिणी एकमात्र शक्ति श्रीदुर्गा छाया की भांति अनुगता होकर चतुर्दश भुवन धारण पोषण करती है, एवं जिनकी इच्छानुरूप चेष्टाभी करती रहतीहै, उस आदि पुरुष गोविन्द का मैं भजन करूँ । गीतामें (९-१०) अध्यक्षरूपी मेरे

६। अथांशभागो यथा वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धादयः।
यथा वराहसंहितायां (२-८२) श्रीभगवान् वराह उवाच—

६७। "राधया सह गोविन्दं स्वर्ण सिंहासनस्थितम्।
पूर्वोक्तरूपलावण्यं दिव्यभूषास्रगम्बरम्॥"

एवं भगवतः सप्तावरणस्य पञ्चमावरणं यथा–(वराह संः
(२-११०-११२,११५,११७,११९)

६८। "तद्बाह्ये स्वर्णप्राचीरे कोटिसूर्य-समुज्ज्वले।
चतुर्दिक्षु महोद्यान-मञ्जु-सौरभमोहिते॥

६९। पश्चिमे सम्मुखे श्रीमत्पारिजातद्रुमाश्रये।
तत्राधस्तु स्वर्णपीठे स्वर्णमन्दिरमण्डिते॥

सान्निध्यमें प्राकृत स्थावर जङ्गम जगतको प्रसव करती है। अतएव इच्छाशक्ति-भगवती दुर्गा है। सम्प्रति ज्ञानशक्ति का विषय कहते हैं- श्रीभगवान् के अवधान मात्रसे ही सृष्टिके उद्भव स्थिति, लय होते रहतेहैं। यथा बाह्य वृत्तिमें-अयस्कान्तमणिवत् जो स्वरूपतः विकार ग्रस्त न होकर भी बुद्ध्यादि को परिचालित करतेहैं, इत्यादि। अयस्कान्त के सन्निधान में आकर जैसे लौह चलने लगता है, अयस्कान्त कुछभी नहीं करता है, पालन एवं विनाश भी नहीं करता है; तद्रुप जिसके सन्निधान से जगद् व्यापार चलरहाहै,इत्यादि-ज्ञानशक्तिहैं॥५॥

वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध प्रभृति अंशभाग आदि का विवरण प्रदत्त हो रहाहै, वराहसंहिता में उक्तहै-भगवान् वराह देवने कहा,—महारूपलावण्य निधान दिव्य भूषामाल्य वस्त्रादि सुशोभित, स्वर्णसिंहासनमें श्रीराधाके साथ श्रीगोविन्द अवस्थान कर रहें हैं। इस प्रकार भगवान् के सप्तावरणके मध्यमें पञ्चावरण इस प्रकार हैं-उसके बाहर चतुर्दिक में कोटि सूर्यसे भी समुज्ज्वल स्वर्ण प्राचीर वेष्टित चतुर्दिकमें महाउद्यान समूह के सौरभ प्रसृत होकर तत्रत्य जीव समूह को मोहित कर रहें हैं। पश्चिमदिक के सम्मुख

७०। तन्मध्ये मणिमाणिक्यरत्नसिंहासनोज्ज्वले ।
तत्रोपरि परानन्दं वासुदेवं जगद्गुरुम् ।।

७१। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ।।

७२। रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजित्या सुलक्षणा ।।

७३। मित्रविन्दा सुनन्दा च तथा जाम्बवती प्रिया ।
सुशीला चाष्ट महिषी वासुदेवाग्रतःस्थिताः ।।

७४। उद्धवाद्याः पारिषदा वृतास्तद्भक्तितत्पराः ।
उत्तरे दिव्य उद्याने हरिचन्दनसंस्थिते ।
सुविस्तीर्णे स्वर्णपीठे मणिमण्डप-मण्डिते ।।"

श्रीसङ्कर्षणावरणं यथा-(वराह सं: २-१२४,१२५,१२७, १२८,१३३)

७५। "तन्मध्ये मणिमाणिक्यदिव्य-सिंहासनोज्ज्वले ।
प्रद्युम्नं सरतिं देवं तत्रोपरि समास्थितम् ।।

भागमें परमसुन्दर पारिजात वृक्ष विराजमानहैं, उसके निम्नदेश में स्वर्णमन्दिर शोभित मणिमाणिक्य रत्नसिंहासनमें उज्ज्वलीकृत स्वर्ण आसन में जगद्गुरु परमानन्द वासुदेव देदीप्यमानहैं, आप शङ्खचक्र-गदापद्मधारी एवं वनमालीहैं, रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, सुलक्षणा, मित्रविन्दा, सुलग्ना, जाम्बवती सुशीला प्रभृति अष्ट महिषी वासुदेब के अग्रभाग में अवस्थिता हैं। उद्धवादि पार्षदगण, पण्डित गण, वासुदेव परायण भक्तगण भी वहाँपर अवस्थान कर रहेहैं। उत्तर दिक्के हरिचन्दन वृक्षशोभित दिव्य उद्यानमें मणिमण्डप मण्डित सुविस्तीर्ण माणिक्यमय दिव्य सिंहासनमें उज्ज्वल स्वर्णपीठ में उक्त पारिषद्गण विराजित हैं।

उत्तरदिकस्थ हरि चन्दनशोभित दिव्यउद्यानमें मणिमण्डप मण्डित सुविस्तीर्ण माणिक्यमय दिव्यसिंहासनमें प्रद्युम्न एवं रतिदेवी

७६ । जगन्मोहनसौन्दर्यसारश्रेणीरसात्मकम् ।
असिताम्बुज–पुञ्जाभमरविन्ददलेक्षणम् ।
पूर्वोद्याने महारण्ये सुरद्रुमसमाश्रये ॥

७७ । तस्याधस्तु महापीठे हेममण्डप-मण्डिते ।
तस्य मध्यस्थिते राजद्दिव्यसिंहासनोज्ज्वले ॥

७८ । श्रीसत्या ऊषया श्रीमदनिरुद्धं जगत्पतिम् ।
सान्द्रानन्दं घनश्यामं सुस्निग्धनीलकुन्तलम् ।
नीलोत्पलदलस्निग्धं चारुचञ्चललोचनम् ॥

७९ । प्रियभृत्यगणाराध्यं यन्त्रसङ्गीतकप्रियम् ।
पूर्णब्रह्मरसानन्दं शुद्धसत्त्व-स्वरूपिणम् ॥" इति ।

एवं श्रीवासुदेवादयः श्रीराधा–कृष्णस्यावरणेनेत्यंश-भागाः । तथा श्रीकृष्णयामले—

८० । "तुरीयातीत एवासौ श्रीकृष्णः प्रेमनायकः ।
पञ्चभेदै रमत्यत्र सर्वतेजोमयः प्रभुः ।
तुरीयातीत एवासौ तुरीयत्वं निगद्यते ॥" इति ।

विराजमानहैं। प्रद्युम्न नीलाञ्जनप्रभ एवं पद्मपलाशलोचन हैं।

पूर्वदिकस्थ उद्यानमें कल्पवृक्षशोभित महावृक्षके नीचे हेम मण्डप मण्डित सुन्दर दिव्यसिंहासनमें उज्ज्वल महापीठमें श्रीमती–उषाके साथ जगत्पति श्रीअनिरुद्ध विराजितहैं, आप सान्द्रानन्द;मेघ-श्यामल, सुचारुचञ्चल नयनयुक्त प्रियभृत्यगण द्वारा आराध्य, वाद्य यन्त्र एवं सङ्गीत प्रियहैं। आप पूर्णब्रह्म रासानन्द, एवं शुद्ध सत्त्व स्वरूप हैं। इससे ज्ञात होता है कि वासुदेवादि श्रीराधाकृष्ण के आवरण स्वरूप हैं, अतएव वे सव अंशभाग इत्यादि हैं। श्रीकृष्ण–यामलमें उक्त हैं–प्रेमनायक यह श्रीकृष्ण तुरीयातीत ही हैं, यह सर्व

अथ ब्रह्मादयः के ? इति यदुक्तं तदेवांशभागः; तथा बृहन्नारदीये प्रथमश्लोकः—

८१। "वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दविग्रहम् ।
उपेन्द्रं सान्द्रकारुण्यं परानन्दविभुं परम् ॥

८२। ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशा लोकसाधकाः ।
तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ॥"

तदत्र इन्दिरानन्दविग्रहमिति विशेषणं कथम् ? तत्राह— श्रीकृष्णं प्राप्तुं लक्ष्मीस्तपति यथा—श्रीसंक्षेपभागवतामृते— (१-६२६–६३०)

८३। "सदावक्षःस्थलस्थापि वैकुण्ठेशितुरिन्दिरा ।
कृष्णोरःस्पृहयास्यैव रूपं विवृणुतेऽधिकम् ॥

८४। पौराणिकमुपाख्यानमत्र संक्षिप्य लिख्यते ॥

८५। श्रीः प्रेक्ष्य कृष्णसौन्दर्यं तत्र लुब्धा ततस्तपः ।
कुर्वतीं प्राह तां कृष्णः किन्ते तपसि कारणम् ?

तेजोमय प्रभु पञ्चभेद प्राप्त होकर क्रीड़ा करते रहते हैं।

पूर्वदृष्ट ब्रह्मादिका स्वरूप क्या है ? उत्तर में कहते हैं, अंश भाग् हैं। यथा वृहन्नारदीय पुराण में वृन्दावन वास्तव्य, लक्ष्मी के आनन्दप्रद विग्रह, महाकरुण, परानन्दमय परमप्रभु उपेन्द्र की वन्दना करता हूँ। लोकरक्षक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इनके अंशहैं, मैं परम विशुद्ध चिद्रुप आदिदेव का भजन करूँ। इस श्लोक में लक्ष्मी के आनन्दप्रद विग्रह, इस विशेषण पद का सार्थक करते हैं, श्रीकृष्ण प्राप्ति कामनासे लक्ष्मी तपस्याकी थी,यथा लक्ष्मी वैकुण्ठेश्वर नारायण के सदावक्षो विलासिनी होने परभी कृष्णवक्ष कामना करके इनको अधिकतर रूपमें वरण किए हैं। यहाँपर पौराणिक उपाख्यान संक्षेप में वर्णित हो रहाहै। लक्ष्मी कृष्ण सौन्दर्य से आकृष्ट चित्त होकर

८६। विजिहीर्षे त्वया गोष्ठे गोपीरूपेति साब्रवीत्।
तद् दुर्लभमिति प्रोक्ता लक्ष्मीस्तं पुनरब्रवीत्॥

८७। स्वर्णरेखेव तेनाथ रन्तुमिच्छामि वक्षसि।
एवमस्त्विति सा तस्य तद्रूपा वक्षसि स्थिता॥"

तथोक्तम्–(भाः१०-१६-३६)

८८। "कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे,
तवाङ्घ्रिरेणुस्परशाधिकारः।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो,
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता॥"

श्रीसंक्षेपभागवतामृते–(१-६३२-६३३)

८९। "नाम्नो हि महिमैतस्य सर्वतोऽधिक ईर्य्यते॥

९०। अतः स्वयंपदात्तेभ्यो भगवान् कृष्ण एव हि।
स्वयंरूपमिति व्यक्तं श्रीमद्भागवतादिह॥"

यथा ब्रह्मसंहितायाम् (५-२९) "लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रम-सेव्यमानं, गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि" इत्येवमिन्दि-रानन्द–मन्दिरमिति विशेषणमेव॥६॥

तपश्चर्या करते रहने पर श्रीकृष्णने उनकी तपस्या का कारण पुछा; लक्ष्मीजी कही–गोष्ठ में तुम्हारे साथ गोपी रूपमें विहार करने की अभिलाषी हूँ। श्रीकृष्ण अङ्गीकार करने पर लक्ष्मी स्वर्णरेखा रूप में विराजित हुई। (भाः१०–१६–३६) हे देव! वैकुण्ठेश्वरी लक्ष्मी नारायणरूपी आपकी ललना होकर भी श्रीमदनमोहनरूपी आपकी चरण रेणु स्पर्शाधिकार की वासना से सर्वकामना परित्याग पूर्वक वद्धनियमा होकर वहुकाल तपस्या करके भी आपको प्राप्त नहीं हुई। किन्तु उस चरण रेणुका अवाध स्पर्शाधिकार यह महनीय नामके भाग्य

७। अथ विष्णु-महाविष्णु-ब्रह्म-शिव-मत्स्य-कूर्मादय इति भगवतः श्रीराधाकान्तस्यांशकुल—कलाशक्त्यावेशादिषु वर्त्तन्ते। एतेषामंशादीनां निर्णयं कर्त्तुं कर्त्ता श्रीभगवान् एव नान्यः। पुराणादिषु यद्दृश्यते, तदत्र लिख्यते; यथा-(ब्रह्मसंहितायाम् ५-४८)

६१। "यस्यैकनिःश्वसितकालमथावलम्ब्य,
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥"

तथा वराह-संहितायां श्रीकृष्णस्वरूपविवरणे (२-५३-५४)

६२। "ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोज-कराङ्घ्रितलशोभितम्।
नखेन्दुकिरणश्रेणीपूर्णब्रह्मैककारणम्॥

में हुआ, यह किस सुकृति का फलहैं नहीं जानती हूँ। इन की नाम महिमा सर्वापेक्षा अधिकतर रूपमें कीर्त्तित है। अतएव श्रीमद्-भागवतके कृष्णस्तु भगवान् स्वयं इसपरिभाषामें स्वयंपदसे अन्यान्य अवतार गणके मध्यमें भगवान् कृष्णही स्वयंरूप ख्यात हैं। (ब्र:सं: ५-२९) अनन्त ब्रजलक्ष्मीगण द्वारा सम्भ्रमके साथसेव्यमान गोविन्द का मैं भजन करता हूँ। अतएव सुन्दर ही कहागया है कि-इन्दिरा-नन्द मन्दिर ॥६॥

विष्णु, महाविष्णु, ब्रह्मा, शिव, मत्स्यकूर्मादि अवतारगण— भगवान् श्रीराधाकान्तके अंश, कुल, कला, शक्ति, एवं आवेश, इत्यादि में गणनीय हैं, यहसव अंशादि का निर्णय करने में कर्त्ता एकमात्र भगवान्ही हैं, अपर कोई नहीं हैं। पुराणादि में जोकुछ देखा जाता है-उसका विवरण लिख रहाहूँ। ब्रह्मसंहितामें जिनके एक निःश्वास को अवलम्बन करके स्वीयरोम विवरजात अगणित ब्रह्माण्ड के पालन

६३। केचिद्वदन्ति तद्रश्मिब्रह्मचिद्रूपमव्ययम् ।
तदंशांशं महाविष्णुं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥"

तथा तत्रैव श्रीकृष्णस्य माहात्म्यकथन-प्रसङ्गे पृथिवीं प्रति श्रीभगवान् वराह उवाच—(२-७१)

६४। यदङ्घ्रि नखचन्द्रांशुमहिमान्तो न विद्यते ।
तन्माहात्म्यं कियद्देवि प्रोच्यते त्वं तदा शृणु ॥ इति ।

६५। "आद्यन्तरहितः सूक्ष्मस्थूलातीतः परात्परः ।
स्वयंज्योतिः स्वयंकर्त्ता स्वयंहर्त्ता स्वयंप्रभुः ॥

६६। कटाक्षमात्र-ब्रह्माण्डकोटि-सृष्टिविनाशकृत् ।
सदाशिव-महाविष्णुरुद्रब्रह्मादिकारकः ।
नराकृतिर्नित्यरूपी वंशीवाद्यप्रियः सदा ॥"

कर्त्ता विष्णु ब्रह्मा शिव स्व स्व अधिकार में अवस्थित हैं, ऐसे महाविष्णु जिनके अंशस्वरूप हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करताहूँ। वराहसंहिता में-श्रीकृष्ण स्वरूप विवरणमें उक्तहै-जिन के कर चरणतल ध्वज वज्र अङ्कुश पद्मादि में चिह्नित एवं जिनके नखचन्द्र किरण माला ब्रह्मका भी मुख्य निदान हैं। कोई कोई उन रश्मि को चित्स्वरूप अव्यय ब्रह्म कहते हैं-मनीषिगण उनके अंशांश स्वरूप को महाविष्णु नाम देते हैं।

पुनर्वार श्रीकृष्ण महिमा कथनमें पृथिवी को श्रीवराहदेव कहे थे-हे देवि ! जिनके चरण नखचन्द्र की एक किरणकणा की महिमा का अन्त का परिज्ञान नहीं होताहैं, उनकी महिमा का अल्पांश मैं वर्णन करता हूँ। श्रवण करो। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में अनन्त त्रिगुणमय ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादि सब उनके कला के कोटि कोटि अंश हैं। आप अनादि, अनन्त, सूक्ष्मस्थूलातीत, परात्पर स्वयं प्रकाश, स्वयंकर्त्ता स्वयंहर्त्ता स्वयंप्रभु हैं। कटाक्षमात्र से ही आप

तथा नारदपञ्चरात्रे नारदानन्त-संवादे भक्तिरहस्ये—

९७। "ताम्रपर्णी नदीतोरे द्राविड़ेऽस्ति किमद्भुतम् ।
भक्तिर्मूर्त्तिमती जाता मलयध्वज-मन्दिरे ॥

९८। नाम्ना प्रेम्णा सदानन्दा ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम् ।
तल्लोकवासिनं देवं वृन्दारण्य-पुरन्दरम् ॥

९९। दिव्यातिदिव्यं श्रीदेहं कालमायाद्यगोचरम् ।
दयितं प्रेमभक्तानामद्वैतं ब्रह्मवादिनाम् ।
मीनकूर्मादयो यस्या अंशांशाः सर्वदेवताः ॥"

तथैवात्र प्रेमतत्त्व–निरूपणे—

१००। "सांख्यतत्त्वं प्रवक्ष्यामि आत्मतत्त्वं विशेषतः ।
भक्तिं मुक्तिं वदिष्यामि प्रेमतत्त्वं वदाम्यहम् ॥

अनन्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि का विनाश कर सकते हैं। सदाशिव महा-
विष्णु रुद्र ब्रह्मादिके जन्मदाता आप नटाकार द्विभुज नित्यरूपी वंशी
प्रिय हैं। नारदपञ्चरात्रमें उक्तहै—द्राविड़ में ताम्रपर्णी नदीके तीर
में महाद्भुत एक वस्तुहैं, मलयध्वज मन्दिर में भक्ति मूर्त्तिमती होकर
प्रादुर्भूत हैं, एवं नाम प्रेम में सदानन्दा, भक्ति निरन्तर पुरुषोत्तम
का ध्यान करती हैं, वह पुरुषोत्तम देव वृन्दावन पुरन्दर होकर भी
वहाँपर निवास करते हैं। आप दिव्यातिदिव्य, परमसुन्दर देहधारी,
कालमायादिका अगोचर हैं, प्रेमभक्त के निकट दयित रूपमें एवं ब्रह्म
वादिगण के निकट अद्वैत रूपमें प्रतिभात होते हैं। मीन कूर्मादि
देवतागण उनके ही अंशांश हैं।

प्रेमतत्त्व निरूपण में भी कहा गयाहै–मैं तुम्हे सांख्य तत्त्व,
विशेषतः आत्मतत्त्व बोलुँगा; भक्ति, मुक्ति एवं प्रेमतत्त्व भी कहूँगा।
वह सर्वशास्त्र में गुप्त, अद्वितीय, निर्लेप, (माया सम्पर्कशून्य) सच्चिदा-
नन्द विग्रह हैं, एवं कोटि कोटि ब्रह्माण्ड के स्रष्टा, पालक, विभु हैं।

१०१। गुणमद्वयनिर्लेपं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।

ब्रह्माण्डकोटिकोटीनां स्रष्टारं पालकं विभुम् ।।

१०२। ब्रह्मविष्णुमहेशानां नाथानां नाथमद्वयम् ।

अनन्तफणामाणिक्य-सेवितं चरणाम्बुजम् ।।"

अतो यावदेवावतारस्वरूपास्ते सर्वे श्रीकृष्णचन्द्रस्यांश-कलादयः । यथा-(ब्रः संः ५-३९)

१०३। "रामादिमूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठ-,

न्नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।

कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो,

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।" इति ।।७।।

८ । अथ यदि श्रीकृष्णः परमपुमान् निरीहः, तस्यावताराः कथम् ? तदाह यथा नारदपञ्चरात्रे गृह्योपनिषदि—

१०४। "रामादयोऽवताराश्च कार्यार्थे सकला भुवि ।

भारावतारा भूम्याश्च महाभारविनाशनाः ।।"

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशगण अधीश्वरगण अप्रतिद्वन्द्वी अधिनायक हैं। उनके चरण पद्म अनन्तदेव के फणा समूह के माणिक्य द्वारा सेवित (उपरञ्जितो होते रहते हैं। अतएव जितने जितने अवतार स्वरूपहैं, सवही श्रीकृष्णचन्द्रके अंश कलादिहैं। यथा (ब्रःसंः५-३९) श्रीरामादि अवतारगण में परमपुरुष कलादिरूपमें नियत अवस्थान कर चतुर्दश भुवन में विविध अवतार प्रकटित करते हैं, स्वयं किन्तु श्री-कृष्णरूप में ही अवतीर्ण होतेहैं, उन गोविन्द का मैं भजन करूँ ।।७।।

सम्प्रति आपत्ति है कि-परमपुरुष श्रीकृष्ण यदि निरीह हैं तव उनका अवतार कैसे सम्भव हो ? उत्तरमें कहतेहैं (नारदपञ्चरात्रमें) पृथिवी में विविध कार्य सम्पादन के लिए रामादि भार हरण कारी

तदेव श्रीवासुदेवादयः पृथ्वीभारहरणाय, ब्रह्मादयः सृजन पालन संहरणाय, मत्स्यस्तु वेदोद्धरणाय, कूर्मस्तु मन्दरधारणाय, वराहस्तु पृथिव्युद्धाराय हिरण्याक्षवधाय च, नृसिंहस्तु हिरण्यकशिपुवधाय, वामनस्तु वलिच्छलनाय, परशुरामस्तु पृथ्वीनिःक्षत्रीकरणाय, श्रीरामस्तु रावणादि–राक्षसवधाय, बलरामस्तु प्रलम्बादिमहामहादैत्य-वधाय, बुद्धस्तु भूतदया-विस्तारणाय, कल्की च, म्लेच्छ-संहरणाय । "परेशत्वं कल्किनोऽपि विष्णुधर्मे विलोक्यते ।" तथा व्यासस्तु वेदधर्म प्रकाशनाय,एवं श्रीभगवतोऽवतारा असंख्याः प्रयोजनापेक्षकाः; तथा श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु श्रीभगवानुवाच—(४-७)

१०५। "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥"

अतः सर्वेऽवताराः सनिमित्ताः । अथ एतेऽवताराः किं–स्वरूपाः ? तदाह ब्रह्माण्डपुराणे—

१०६। "एतस्यैवापरेऽनन्ता ह्यवतारा मनोरमाः ।
महाग्नेरिव यद्वत् स्युरुल्काः शतसहस्रशः ॥"

अवतारगण प्रकट होकर पृथिवी का भार निरसन करते हैं। उसको कहते हैं–श्रीवासुदेवादि पृथिवी का भार हरण, ब्रह्मादि के सृजन पालन, संहार, मत्स्य का वेदोद्धार, कूर्मका मन्दर धारण, वराहका पृथिवी उद्धार, हिरण्याक्षवध, नृसिंहका हिरण्यकशिपुवध, वामनका वलिछलन, परशुरामका निःक्षत्रीय करण, श्रीरामचन्द्रका रावणादि राक्षसवध, वलरामका प्रलम्बादि महामहाद्दैत्य विनाश, वौद्धका जीव दया प्रचार, कल्किका म्लेच्छसंहार ही विशेष कार्यहैं।

विष्णुधर्म में कल्किका परेशत्व वर्णित हैं, इस प्रकार श्रीभग-

तथैव-१०७। "वन्याजलं प्रायमशेषनिस्तृतं,
विष्वक् क्षितिं व्याप्य विवर्द्धते भृशम् ।
यस्मात् समुद्भूतमहो ततः पुनः,
काले भूय प्रविशेत्तथैवम् ।।"

श्रीसंक्षेपभागवतामृते—(१-६६०-६६१)

१०८। "अतएव पुराणादौ केचिन्नरसखात्मताम् ।
महेन्द्रानुजतां केचित् केचित् क्षीराब्धिशायिताम् ।।
१०९। सहस्रशीर्षतां केचित् केचिद् वैकुण्ठनाथताम् ।
ब्रूयुः कृष्णस्य मुनयस्तत्तद्वृत्तावगामिनः ।।"

तथा नारदपञ्चरात्रे—

११०। "तदाज्ञाकारिणः सर्वे ब्रह्माण्डेश्वर-रूपिणः ।
लीलासुखमयात्मानस्तत्प्रेमरूपभावनाः ।।"

वान् के असंख्य अवतारगण सव ही प्रयोजन अपेक्षक हैं। गीतामें उक्तहैं-जव जव धर्म की ग्लानि अधर्मका अभ्युत्थान होताहैं, तव तव मैं पृथिवी में अवतीर्ण होताहूँ। अतएव सकल अवतार ही सहेतुकहैं।

सम्प्रति जिज्ञासा है-यह सव अवतार किस स्वरूपके हैं? उत्तर। महाग्निसे जिस प्रकार शतसहस्र उल्का प्रसृत होताहै तद्रूप इस पुरुषोत्तममें अनन्त अवतार गणित होते हैं, एवं दिगन्त प्रसारि वन्याजल प्रायशः विश्वप्लावन करके निरन्तर वृद्धि प्राप्त होकर जिस सागरसे उद्भुत हुआ था उसमें ही प्रविष्ट होताहैं। तद्रूप अनन्त अवतार महावतारी श्रीकृष्णचन्द्रसे समुद्भूत होकर पुनर्वार श्रीकृष्ण में पर्यवसित होतें हैं। इसलिए कृष्ण रहस्य मुनिगण पुराणादि में कोई नरसख, उपेन्द्र, क्षीराब्धिशायी, सहस्रशीर्षा वेकुण्ठनाथ कह कर कीर्त्तन करते हैं नारदपञ्चरात्रमें उक्त है-सकल ब्रह्माण्डेश्वरगण ही उनकी आज्ञाकारी हैं, लीलासुखमय स्वरूप एवं उनका प्रेमस्वरूप

तथा (भा:–११-६-१४)

१११। "नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति,
ब्रह्मादयस्तनुभृतो मुहुरर्द्यमानाः ।
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य,
शं नस्तनोतु चरणं पुरुषोत्तमस्य ॥"

तथा गोलोकसंहितायां श्रीभगवतो जिह्वामूलात् सरस्वत्युद्-भूय श्रीकृष्णं प्रति साकाङ्क्षं कटाक्ष-मकरोत्-इति दृष्ट्वा श्री-भगवान् सरस्वतीं प्रति शशाप, 'भवति तरुरुपा भव' अन्ते ब्रह्मास्यात् समुद्भूय ब्रह्मणः पत्नीत्वमायास्यतीति शापद्वयं श्रुत्वा सरस्वती चुकोप, सरस्वत्यपि श्रीभगवन्तं श्रीकृष्णं प्रतिशप्तवती, सरस्वत्युवाच-हे भगवान् ! एकापराधे शापद्वयं दत्तं यथा, तथा अहमपि शपामि–'भगवन् ! अङ्गजया सह रमिष्यसि' इति । तदनु सापराधैव सरस्वती स्तुतिश्चकार—
का ही भावक हैं ।

श्रीभा:(११-६-१४) कालरूपी पूरुष प्रकृति का अगोचर एवं पुरुषोत्तम तुम्हारे अधीन होकर ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त प्राणिगण विद्ध-नासिक वलीवर्दके समान परस्पर युद्धादि कर पीड़ित होतेहैं, पतएव तुम्हारे चरणकमल हमसवके मङ्गल विधान करें। गोलोकसंहिता श्रीभगवान् की जिह्वामूल से सरस्वती उद्भूत होकर श्रीकृष्ण के प्रति कटाक्ष निक्षेप करने लगी। यह देखकर श्रीकृष्ण उनको अभिसम्पात किये, तुम तरु होजाओ, पश्चात् ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होकर उनकी पत्नी वनोंगी। यह शापद्वय को सुनकर सरस्वती कुपिता होगई, सरस्वती सेभी श्रीकृष्णको शाप दिया, एक अपराध से तुमने मुझको दो शाप दिया, इसलिए मैं भी शाप दूँगी। तुमभी अङ्गजाके साथ रमण करोगे। तदनन्तर सापराधा सरस्वती स्तुति करने लगी, हे

११२। "जगत् सर्वं त्वयि न्यस्तं न्यस्ताः प्रकृतयस्तथा।
पुरुषाश्च तथा कृष्ण त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

११३। त्वय्येव विलयं यान्ति उत्पत्स्यन्ति रमन्ति च।
दोष एष कृतोऽज्ञानात् क्षमस्व परमेश्वर।
इत्युक्त्वा सा महादेवी विरराम सरस्वती ॥"

तथा ब्रह्मसंहितायां (५-५१)

११४। "अग्निर्मही गगनमम्बु मरुद्दिशश्च,
कालस्तथात्ममनसीति जगत्त्रयाणि।
यस्माद्भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यञ्च,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥" इति ॥८॥

९। अथ श्रीकृष्णस्यावताराणां स्वरूपमाह पद्मपुराणे निर्वाण -खण्डे रहस्याध्याये श्रीभगवानुवाच व्यासं प्रति—

११५। "यदिदं मे त्वया पृष्टं रूपं दिव्यं सनातनम्।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥

कृष्ण, तुम्हारे में निखिल जगत् प्रकृति वर्ग विन्यस्त हैं. पुरुषगण तुम्हारे में प्रतिष्ठित हैं, समस्त वस्तुका विलय तुम्हारे में होताहैं, तुमसे उत्पन्न होकर तुमसे सुखी भी होते हैं। हे परमेश्वर! मेरा अज्ञानकृत दोष को क्षमा करो, यह कह कर महादेवी सरस्वती चूप होगई। (ब्र: सं: ५१) अग्नि, पृथिवी, आकाश, जल, वायु, दशदिक, काल, आत्मा, मन त्रिभुवन जिससे उत्पन्न होतेहैं जिसमें स्थिति लाभ करतेहैं, एवं जिसमें प्रविष्ट होतेहैं उस आदि पुरुष गोविन्दका मैं भजन करूँ ॥८॥

अधुना श्रीकृष्णावतार गणके स्वरूप को कहते हैं, पद्मपुराणमें व्यासदेव को श्रीभगवान् कहे थे, तुम्हारे जिज्ञास्य मेरा यह रूपहै

११६। पूर्णं पद्मपलाशाक्षं नातःपरतरं मम ।

सत्यं व्यापि परानन्दं चिद्घनं शाश्वतं परम् ।

ममावतारो नित्योऽयमत्र मा संशयं कृथाः ॥"

अतः सर्वोपरिवैभवः सर्वेषामाधारस्वरूपः श्रीकृष्णचन्द्रः सर्वेषामात्मस्वरूपः । अथैतस्य समं तन्माययाच्छन्नाः केचिदन्यं कुर्वन्तीति तत्राह—

११७। यस्यैवाङ्घ्रिकलांशसम्भव-महाविष्णुस्त्वनेकस्तत-

स्तस्यैकस्य च रोमकूपजठरे ब्रह्माण्डकोऽनेकशः ।

तस्यैकाण्डकमध्यतो भगवतोऽनेकावताराः स्थिताः

श्रीकृष्णस्य च तस्य साम्यमकरोदन्यं त्वहोऽस्याज्ञता ॥

तच्च—

११८। यथा कोटीश्वरो राजा तत्तुल्यः किं शताधिपः ।

पलं पलार्द्धं कर्षं वा तुल्यं मूल्यं किमिष्यते ॥

दिव्य सनातन नित्य निर्म्मल निष्कल, प्राकृत क्रियाशुन्य, शान्त, सच्चिदानन्द विग्रह, पूर्णपद्मपलाशलोचन, परात्पर, सत्य, व्यापक; परानन्दमय, चिद्घन एवं परम शाश्वतहैं, मेरा यह अवतार नित्यहैं इसमें संशय न करना।

अतएव सर्वोपरि वैभवयुक्त, सबके आधारस्वरूप एवं आत्मास्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं। इनकी मायासे आच्छन्न होकर कोइ कोइ अन्य देवता को इनके समान सम्मान करना चाहते हैं, उसके लिए ही कहते हैं–जिनके चरणपद्म कलाके अंशसे अनेक महाविष्णु अवतार होतेहैं, उनके (महाविष्णुके) रोमकूप के मध्यमें अनेक ब्रह्माण्ड का सन्निवेशहैं, उस ब्रह्माण्डावलिके क्षुद्र एकमें भगवान्के अनेक अवतार संस्थित होतेहैं; अहो ! उनकी मूर्खताकी बात क्या कहें, जो श्रीकृष्ण के साथ अन्यदेवता के साम्य करने की चेष्टा करते हैं ? उसके लिए

११९। सुवर्णस्य च रत्नस्य वस्तु चैकं न चान्यथा ।
गङ्गायाः कुम्भ-संस्थाप्यं जलं गङ्गाजलं स्मृतम् ।
गङ्गायाश्च विनिक्षिप्तं पुनर्गङ्गैव तद्यथा ॥

तदेव-सम्पूर्णानन्दविग्रहः श्रीकृष्णचन्द्रः, तस्यांशकलात्वेनान्ये निरूपिताः । इत्यादि सर्वं पूर्वमुक्तं (पूर्वप्रकाशे) तस्मिंश्च ज्ञातव्यमेव । इत्यादि श्रीभगवतोऽनन्तमहिम्नो गुण-प्रकाशादि यत् किञ्चित् पुराणादिषु दृष्टं तदुक्तम्;सम्यग् ब्रह्मादयो वक्तुं न समर्थाः, यथा—श्रीभागवते (१०-१४-२१,१४)

१२०। "को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्,
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति,
विस्तारयन् क्रीड़सि योगमायाम् ॥"

ही कहता हूँ—कोटीश्वर राजाके साथ क्या शतमुद्रा विशिष्ट की तुलना होती है ? पल (४ तोला), पलार्द्ध (२ तोला), कर्ष (१ तोला) के मूल्यमें कभी समता हो सकती हैं ? पक्षान्तर में सुवर्ण क्या रत्न निर्मित वस्तु है ? सुवर्ण अथवा रत्नसे पृथक कुछ नहीं हैं, गङ्गाजल कुम्भके मध्यमें स्थापित होने परभी उसको गङ्गाजल ही कहा जाता है—तद्रूप पूर्णानन्दविग्रह श्रीकृष्णचन्द्र हैं एवं अन्यान्य अवतार उनके अंशकला रूपमें ही निर्दिष्ट हैं। यह बात पहले भी कही गई हैं।

अनन्त महिमा मण्डित श्रीभगवान्के गुण प्रकाशादि पुराणादि में जोकुछ मिलाहै, उसको कहागया हैं। उसका सम्यक् वर्णन करने में ब्रह्मादि भी समर्थ नहीं हैं, यथा (भा: १०-१४-२१) हे भूमन् ! हे भगवन् ! हे परात्मन् ! हे योगेश्वर ! इस त्रिभुवनमें तुम्हारी लीला किस देशमें, किस कालमें, किस कारण से कितनी संख्या में होते रहते हैं, कौन उसको जान सकता हैं ? (भा: १०-१४ १४) हे

१२१। "नारायणस्त्वं नहि सर्वदेहिना,–
मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायना,–
त्तच्चापि सत्यं न तवैव माया॥"

तथा-१२२। "यस्यैव योऽनुगुणभुक् वहुधैक एव,
शुद्धोऽप्यशुद्ध इव मूर्त्ति-विभागभेदैः।
ज्ञानान्वितः सकलसत्त्वविभूतिकर्त्ता,
तस्मै नतोऽस्मि पुरुषाय सदाव्ययाय॥"

तथा–(भा२-६-३५)

१२३। "आस्थाय योगं निपुणं समाहित–,
स्तं नाध्यगच्छं यत आत्म–सम्भवः।
नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां–,
भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम्॥"

अधीश! तुम सर्व लीकासाक्षी हो, तुम जव निखिल जीवकी आत्मा, तव क्या मेरा जनक नारायण नहीं हो? नर से उत्पन्न, चतुर्विंशति तत्त्व एवं जल जिनका आश्रय, उनका नाम नारायण हैं। विष्णु–पुराण में उक्तहै, सकल जीव एवं विभूति के कर्त्ता नारायण हैं, जिन से ही गुण सम्पन्न, एक होकर भी अनेक रूपमें, शुद्ध होकर भी मूर्त्ति विभागभेद से अशुद्धवत् प्रतीयमान् होते हैं, एवं ज्ञान समन्वित नित्य अव्यय पुरुष श्रीकृष्णके चरण में प्रणत हो रहा हूँ। (भा:२-६-३५) अहो! समाहित चित्तमें निपुणता के साथ योगाश्रय करके भी मैं आतमयोनि ब्रह्मा होकर भी जिनको जान न सका, उन परम प्रभुके चरण को प्रणाम करताहूँ। कारण उक्त चरणाश्रयकारी का संसार नष्ट होजाता है। वह श्रीचरण प्रेमसुख दायक एवं परम मङ्गल जनक हैं, ऐसा होनेपर श्रीकृष्ण ही परमपुरुष, परमानन्द स्वरूप एवं विभु

इत्येवम्—

१२४। श्रीकृष्णः परमः पुमांश्च परमानन्द-स्वरूपो विभु
राधाप्रेम-समन्वितो रसमयः श्यामो जगन्मोहनः ।
एवं तद्गुणवर्णनं मरकतं रत्नं किरीटं कुरु
क्षिप्रं राघवकृन्निवेदनमिदं श्रुत्वान्यचित्तं त्यज ॥

इति श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाशे श्रीमन्नन्दकिशोरस्वरूप-कृष्णचन्द्रप्रकाशनिरूपणं नाम पञ्चमं रत्नम् ॥५॥

** षष्ठः प्रकाशः **

—**—

१। अथ प्रवक्ष्ये श्रीकृष्णचरणाम्बुज-सेवनम् ।
समस्तदुःखदमनं नित्यानन्द-सुखप्रदम् ॥

१। तदेव श्रीभगवतश्चरणलाभस्य किमुपायस्तदाह-अहो ! अनन्यया भक्त्या, यथा श्रीभगवन्नियमः (भाः११-१४-२१)

२। "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥"

हैं। वह श्याम ही राधाप्रेम समन्वित होकर रसमय एवं जगन्मोहन हैं, उनके गुण वर्णन प्रधान राघव द्वारा निवेदित यह प्रबन्धरूप मरकत रत्न को सत्वर किरीट (मुकुट) रूपमें धारण (श्रवण) कर अन्य वासना का त्याग करो ॥६॥ इति पञ्चमरत्न ॥५॥

सम्प्रति सर्वदुःख नाशन एवं नित्यानन्द सुखप्रद श्रीकृष्णचरण सेवा के वृत्तान्त वर्णित होगा। श्रीभगवच्चरणारविन्द प्राप्त होने का उपाय क्या हैं ? उत्तर-अहो ! अनन्य भक्ति ही एकमात्र उपायहैं ।

तथा शुकोक्तिः (भाः ७-७-५२)

३। "न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्‌विडम्बनम् ॥" इति।

भक्तिः किमिति तदाह नारदपञ्चरात्रे—

४। "सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण-हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते ॥"

तस्यां भक्तौ त्रिविधं लक्षणम्-साधनी, ज्ञानान्विता, प्रेम-लक्षणा च। साधनी यथा—

५। श्रवणं कीर्त्तनञ्चैव स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनञ्चेति साधनी षड्‌विधा मता ॥

एतासामादौ श्रवणभक्तिरिति श्रेष्ठा। यथा—

६। श्रवणाज्जायते श्रद्धाप्यरतिर्भक्तिरुत्तमा।
यन्न श्रुतं च तस्यैव कथं सङ्कीर्त्तनादयः?

यथा-(भाः ११-१४-२१) श्रीभगवन्नियम-इस प्रकार हैं, केवल श्रद्धा भक्ति के बलसे ही सज्जनगण के प्रिय एवं आत्मस्वरूप मैं ग्राह्य आराध्य हूँ। मात्रः एकान्त भक्ति चण्डालको भी पवित्र करती हैं। (भाः ७-७-५२) में श्रीशुकदेवने कहाहै दान, तपस्या, यज्ञ, शौच, व्रत प्रभृति श्रीहरिके प्रीतिकर नहीं हैं, विशुद्ध भक्तिसे ही श्रीहरि प्रसन्न होतेहैं, उसको छोड़कर सबही विडम्बनमात्र हैं।

भक्ति क्या हैं? उसको कहते हैं, सकल उपाधि (ज्ञानकर्म योगादि) निर्मुक्त, कृष्णानुकूल्य होने के कारण निर्मल, एवं सर्वेन्द्रिय द्वारा हृषीकेश की सेवाही भक्तिहैं। इसका लक्षण तीन प्रकार है- (१) साधनी, (२) ज्ञानयुक्ता, (३) प्रेमलक्षणा। साधनी-श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरणसेवा, अर्चना, वन्दना यह छै प्रकार हैं। इसके मध्यमें प्रथमोक्त श्रवण भक्तिही श्रेष्ठहैं। श्रवणसे श्रद्धा, विषयविरक्ति,

अत आदौ भक्तिश्रवणम्; यथा—(भाः २-२-३७)

७। "पिवन्ति ये भगवत आत्मनः सतां,
कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ।
पुनन्ति ते विषय-विदूषिताशयं,
व्रजन्ति तच्चरण-सरोरुहान्तिकम् ॥"

(भाः—१२—४—४०)—

८। "संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो,-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण,
पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥"

अतः श्रवणात् संकीर्त्तनभक्तिर्जायते । तथा—

९। श्रीकृष्णनामगुणसंश्रवणं समस्त,-
भक्तेर्निदानमपि सद्भिरुदाहृतं तत् ।
यस्माद्भवेद्रतिरलं क्रमशोऽप्यखण्ड,-
संकीर्त्तन—स्मरण—सेवन—वन्दनादौ ॥

एवं उत्तमा भक्ति आविर्भूत होतीहैं । जिस विषयमें श्रवण नहीं हुआ हैं,उस विषयमें कीर्त्तनादि साधित कैसे हो सकतेहैं ? अतएव प्रथमतः भक्ति श्रवण (भाः२-२-३७) सज्जनों की आत्मा (प्राणेश्वर) भगवान् के कथामृत श्रवण द्वारा जो जन पान करते हैं, वेसव विषय विदुष्ट चित्तको पवित्र करतेही हैं, अधिकन्तु भगवान्के चरण समीप की प्राप्त करते हैं ।(१२-४-४०)विविध दुःख दावानलसे प्रपीडित एवं अति दुष्पार संसार सिन्धुसे उत्तरणेच्छु व्यक्तिके लिए भगवान् पुरुषोत्तम की लीलारस कथा निषेवण व्यतीत अन्य कोई भी प्रबल (ज्ञानादि उत्तरण साधन) सहायक नहीं हैं। इस प्रकार श्रवण से सङ्कीर्त्तन भक्ति आविर्भूत होतीहैं, श्रीकृष्णके नाम गुणादि का श्रवण समस्त

तदेव-'हरेर्नाम्नां गुणानाञ्च गानं कीर्त्तनमुच्यते'। यथा (भाः ६-७-२४) "एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां, संकीर्त्तनं भगवतो गुण-कर्म-नाम्नाम्" इत्यादि। तथैव (भाः ११-२-३६)

१०। "शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे,-
जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि,-
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥"

तथा (पद्यावल्याम्—२०)—

११। "वेपन्ते दुरितानि मोहमहिमा सम्मोहमालम्बते
सातङ्कं नखरञ्जनीं कलयते श्रीचित्रगुप्तः कृती।
सानन्दं मधुपर्कसंभृतिविधौ वेधाः करोत्युद्यमं
वक्तुं नाम्नि तवेस्वराभिलषिते ब्रूमः किमन्यत् परम्॥"

भक्तिका निदान है,—साधुगण कहते हैं। इस श्रवण भक्तिसाधनसे ही क्रमशः निरवच्छिन्न संकीर्त्तन, स्मरण, सेवा एवं वन्दनादि में यथेष्ट रतिका प्रादुर्भाव होताहै) श्रीहरिके नाम गुणादि का गानही संकीर्त्तन शब्दसे कहा जाताहै। (भाः ६-३-२४) भगवान् के गुण, कर्म, एवं नामादिका सम्यक् कीर्त्तन ही पापनाश के उपयोगीहै ऐसी बात नहीं हैं; कारण इसमें से किसी एक का असम्यक् कीर्त्तनसे भी सर्वविध पापका विनाश होताहैं। (भाः ११-२-३६) चक्रधारी श्रीकृष्ण के शास्त्रसिद्ध एवं लोक प्रसिद्ध मङ्गलमय जन्म कर्मादि का श्रवण एवं तदर्थक नामावलिका कीर्त्तनकर निस्पृह एवं निर्लज्ज होकर विचरण करें।

बामन पुराण में उक्तहै-हे प्रभो! तुम्हारे नाम करने की अभिलाष करनेसे भी पाप समूह कम्पित होते हैं, मोहमहिमा सम्यक् मोहित हो जाती हैं, सुकृती चित्रगुप्त पापिगण की गणनामें इसका नाम लिखा हुआ हैं, यह देखकर भयसे नाम को निकाल देने के लिए

बृहन्नारदीये—(३२-४५)

१२। "यन्नामोच्चारणादेव महापातकनाशनम् ।

यं समभ्यर्च्चर्य विप्रेन्द्राः परं मोक्षं लभेन्नरः ॥" इति॥१॥

२। एवं संकीर्त्तनात् स्मरणं जायते। ब्रह्मवैवर्त्ते—

१३। "स्वस्ति श्रीविष्णुलोकाद्धरिचरणरजःपुञ्जपिञ्जोत्तमाङ्गः

कालारिः संयमन्यां मधुरिपुवचनादादिशत्यर्कपुत्रम् ।

भव्यं चान्यन्मुरारेः स्मरणविघटिताशेष-पापान्धकाराः

पूर्णा अप्युद्धवन्तो न कथमपि न वा वारणीयास्त्वयैव ॥"

तथैव स्कान्दे—

१४। "तदैव पुरुषो मुक्तो जन्मदुःखजरादिभिः ।

भक्त्या तु परया नूनं यदैवं स्मरते हरिम् ॥"

तत्र श्रीकृष्णस्मरणेन न केवलं दुःखहरणम्, भक्तिमुक्तिदमेव; यथा गोविन्दवृन्दावने प्रथमपटले-(२० श्लोः)

१५। "कृष्ण एव परं ब्रह्म सच्चिदानन्द-सुन्दरः ।

स्मृतिमात्रेण येषां वै भक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥" इत्यादि ।

नरहूनी पकड़ते हैं। नामोच्चारक व्यक्ति वैकुण्ठ गमन करेंगे शोचकर ब्रह्मा आनन्दातिशय से उनका स्वागत करने के लिए मधुपर्क का आयोजन में उद्योगी होते हैं। अतएव नाम महिमा और क्या कहूँ ? वृहन्नारदीय में कथित है-हे ब्राह्मणवर्यगण ! श्रीहरि के नामोच्चारण मात्रसे ही महापातकनाश होताहै एवं अर्च्चना करनेसे ही मानव परा-मुक्ति प्राप्तकर सकते हैं, स्वरूप का जागरण होता हैं ॥१॥

इसप्रकार संङ्कीर्त्तन करते करते स्मरण होताहै, ब्रह्म वैवर्त्तमें उक्तहै-मङ्गलमय श्रीविष्णुलोक से श्रीहरिके चरण परागसे सुशोभित मस्तक कालारि यमपुरी में जाकर श्रीविष्णु के आदेश से यमराज को कहते हैं; अन्य शुभकथा सुनो-श्रीहरिके स्मरण से जिनके निखिल

एवं श्रीकृष्णपादाम्बुज-स्मरणेन पादसेवनादौ मतिर्जायते-ऽन्तर्निर्मलत्वेन; यथा-(भा: २-८-४)

१६ । "प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥"

अथ पादसेवनम् यथा-(भा: ३-१९-३६)

१७ । "तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ।
कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥"

(भा: १०-२-३०)

१८ । "त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि,
समाधिनावेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन,
कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥"

अथैवं पादसेवनादर्चने मतिर्जायते । तदर्चनं यथा—

(भा: ८-२२-२३)

पापान्धकार विदूरित होगयाहै वेसव पूर्वमनोरथ उत्सव (आनन्द) परायण भक्तगण को तुम कभी भी वाधा न देना । स्कान्द में वर्णित हैं,-पुरुष तवही जन्म दुःख जरादिसे मुक्त हो सकताहैं, जव वह पुरुष, परम भक्तिके साथ श्रीहरिका स्मरण करताहै । श्रीकृष्ण स्मरणसे केवल दुःख हरण ही होताहैं, यह नहीं, परन्तु इससे मुक्ति भी सम्पादित होतीहै । गोविन्द वृन्दावन में उक्तहै-सच्चिदानन्द, सुन्दर श्रीकृष्णही परमब्रह्महैं, आप स्मरण पथमें आकर मानव को भुक्ति मुक्ति प्रदान करते हैं ।

इसप्रकार श्रीकृष्ण पादपद्म स्मरण से पाद सेवनादि में मति होतीहैं, कारण उससे अन्तःकरण निर्म्मल होता हैं । (भा:२-८-४) शरत्काल के प्रवेश से जिस प्रकार नदीके जल का मालिन्य दूर हो

१९। "यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ?"

नारदीये—

२०। "जलेनापि जगन्नाथः पूजितो क्लेशहा हरिः ।
परितोषं व्रजत्याशु तृष्णार्त्तः सलिलैर्यथा ॥"

तथैव द्वात्रिंशाध्याये-(३६)

२१। "मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य यो हरिं नार्चयेत् सकृत् ।
मूर्खः परतरस्तस्मात् कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥"

तथैव—(३२-४४)

२२। "ध्यातः स्मृतः स्तुतो वापि नमितो वा जनार्दनः ।
संसारपाशविच्छेदी कस्तं न प्रति पूजयेत् ?" (२)

जाताहै, उसप्रकार श्रीहरि कर्णरन्ध्र द्वारा हृदयमें प्रविष्ट होनेपर भक्त जनके हृदयकमल का मालिन्य नष्ट होजाता है। पादसेवन (भाः ३-१९-३३)ः यथा–श्रीहरि अनन्यशरण सरल चित्त मानवगणके सुखाराध्य हैं, केवल असाधुगण ही उनको दुराराध्य मानते हैं, शरणागत पालक आपहैं, यह जानकर कौन कृतज्ञव्यक्ति उनकी चरणसेवा नहीं करेगा ? अनन्तर पादसेवन से अर्चनमें मति होतीहै, यथा–(भाः ८-२२-२३) हे प्रभो ! लोक शठता को छोड़कर तुम्हारे पादपद्म में जलमात्र प्रदान करताहै, एवं दुर्वाङ्कुर द्वारा भी उत्तम परिचर्या कर अत्युत्कृष्ट गति प्राप्त करतेहैं, ऐसे श्रीहरि को त्रिभुवन दान करके भी क्यों निग्रहपात्र बनेगा ? वृहन्नारदीयमें उक्तहै–क्लेश नाशन जगन्नाथ हरि जलद्वारा भी पूजित होनेपर तृषार्त्तव्यक्ति की जलपानसे तृप्ति की भाँति शीघ्रही परितोष प्राप्त होतेहैं। ३२ अध्यायमें कथित हैं–

३। अथ प्रणाममाह नारसिंहे—

२३। "नमस्कारः स्मृतो यज्ञः सर्वयज्ञेषु चोत्तमः।
नमस्कारेण चैकेन साष्टाङ्गेन हरिं व्रजेत् ॥"

पाद्मे देवदूत-विकुण्डलसंवादे—

२४। "कृत्वापि वहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः।
न याति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम् ॥"

तत्र दण्डप्रणामं यथा—

२५। "दण्डप्रणामं कुरुते विष्णवे भक्तिभावतः।
रेणुसंख्यं वसेत् स्वर्गे मन्वन्तरशतं नरः ॥"

तत्र प्रदक्षिणमाहात्म्यं यथा वाराहे—

२६। "एवं कृत्वा तु कृष्णस्य यः कुर्याद्द्विः प्रदक्षिणम्।
सप्तद्वीपवती पुण्यं लभते तु पदे पदे ॥

दुर्लभमानुष देह लाभकर जो एकवार श्रीहरिका अर्च्चन नहीं करता हैं। उससे अधिक मूर्ख एवं अचैतन्य जीव और कोई भी होताहैं? ध्यान, स्मृति, स्तुत अथवा नमित होने परभी जो जनार्दन संसार पाशच्छेदन करते हैं उनकी पूजा कोन नहीं करेगा? (२)

सम्प्रति प्रणाम सम्बन्ध में कहते हैं-(नारसिंहमें) नमस्कार ही सकल यज्ञ से उत्तम यज्ञ है; एकही साष्टाङ्ग नमस्कार करके भी जीव श्रीहरिचरण लाभ कर सकते हैं। (पाद्म में) अनेक पाप करके भी मुग्धजीव सर्व पापनाशन श्रीहरिको नमस्कार करने से नरक यातना से परित्राण पाता हैं। दण्डवत् प्रणाम–भक्तिके साथ श्रीविष्णु को दण्डवत् प्रणाम करने से रेणु संख्यक अनन्त मन्वन्तर तक स्वर्ग में अवस्थान होता हैं। प्रदक्षिण माहात्म्य–(वाराहमें) इस प्रकार जो जन कृष्ण की दो प्रदक्षिणा करताहैं, वह प्रत्येक पद विक्षेपमें सप्त द्वीपवती पृथिवी का दान अथवा परिक्रमण का पुण्यलाभ करता हैं।

२७। तत् ख्यातं यत् सुधर्मस्य पूर्वस्मिन् गृध्र-जन्मनि ।
कृष्णप्रदक्षिणाभ्यासान्महासिद्धिरभूदिति ।।"

तथा--

२८। "पतितः स्खलितो वार्त्तः क्षुद्वाधा-विवशो गृणन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्व्वपातकात् ।।" (३)

४। अथ ज्ञानान्विता यथा-'दास्यं सख्यं तथा चात्मनिवेदन-मिति त्रयम् ।' तत्र दास्यं यथा-(भाः ९-५-१६)

२९। "यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किंवा दासानामवशिष्यते ?"

श्रीकृष्ण एव सर्वेषां परं सर्वोपासनीय इति निश्चय-ज्ञानेन सद्भिः श्रीभगवद्दासत्त्वं स्वीकृतम् । ततस्तदनुसन्धी-यते, तदेव-(भाः १०-४१-५८)

३०। "समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं, महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं, पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ।।"

तत्र दास्यमेव द्विविधम्-दासत्वम्, दासीत्वञ्च । तत्र -दासभावः (६-११-२४)

पूर्वतन गृध्रजन्म में श्रीहरि की प्रदक्षिणा करके सुधर्म ने जिस महा-सिद्धि की प्राप्ति की थी, वह तो प्रसिद्ध ही है, एवं पतित, स्खलित, आर्त्त, अथवा क्षुत् पीड़ाभिभूत होकर भी उच्चकण्ठ से 'हरये नमः' कहने में समर्थ होनेपर जीव सर्वपातक से मुक्त होता है ।।३।।

अनन्तर ज्ञानयुक्ता भक्तिके सन्दर्भ में कहते हैं–दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन यह तीन ज्ञानान्विता भक्तिहै, उसमें दास्य यथा (भाः९-५-१६) जिनके नाम श्रवण मात्रसे जीव निर्मल होतेहैं, तीर्थपाद उन भगवान्के दासगण के लिए अप्राप्य क्या है ? श्रीकृष्णही परात्पर

३१। अहं हरे तव पादैकमूल,-दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणानां, गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

३२। "परमात्मसमशेषस्य जगतः प्रभवाप्ययम्।
शरण्यं शरणं गच्छन् गोविन्दं नावसीदति ॥"

तत्र दासीभावो यथा सम्मोहनतन्त्रे नारदं प्रति सनक उवाच-

३३। "दासभावः सख्यभावः पुत्रभावस्तथैव च।
नारीभाव विशेषेण गुह्याद्गुह्यतमः स्मृतः ॥"

तथादिपुराणे—

३४। "गोपीभावेन ये भक्ता मामेवं समुपासते।
तेषु तेष्विव तुष्टोऽहं सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।
भावानुरूपं सर्वत्र पार्थ व्यवहराम्यहम् ॥"

तत्त्व एवं सर्वोपासनीय है, इसका निश्चय ज्ञान होनेपर ही साधुगण श्रीभगवद्दास्य को स्वीकार करते हैं। उसके वाद दास्य को सदाके लिए वरण करते हैं। यथा-(भा: १०-१४-५८) जो लोक ब्रह्मरुद्रादि देवगण के आश्रयीभूत पुण्यकीर्त्ति मुरारिके पादपल्लवरूप भेलाका आश्रय ग्रहण निष्कपट से करते हैं, उनसवके पक्षमें दुस्तर भवसागर भी गोवत्सपदके तुल्य अतितुच्छ होता है, श्रीवृन्दावनादि नित्यधाम उनसवके आश्रय स्थान होतेहैं, वेसव कदाच इस दुःखास्पद जगतमें नही आतेहैं। यहाँपर दास्य द्विविध है-दासत्व एवं दासीत्व। दास भावके सम्वन्धमें (भा: ६-११-२४) हे हरे! तुम्हारे चरणकमलैक समाश्रित दासके अनुदास होनेके लिए जन्म जन्ममें इच्छा करता हूँ। मनप्राणेश्वरके गुणावलि का स्मरण करे। वाक्य गुणकीर्त्तन करे, एवं देह तुम्हारे कर्म में व्यापृत हरे। विष्णुधर्मोत्तरमें उक्तहै-निखिल जगत् के परमातमा, उत्पत्तिप्रलयस्थान, शरण्य गोविन्द को आश्रय

अथ सख्यभावो यथा—श्रीकृष्ण एव परमब्रह्म रसमय-लीलाविग्रहः। यद्यद्वाञ्छन्ति, तत्तत् प्राप्नुवन्तिइति ज्ञानेन सख्यभावं कुर्वन्ति सन्तः। तद्यथा—(भाः १०-२९-१५)

३५। "कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥"

यथा महाभारते—

३६। "अर्जुनस्य सखा कृष्णः कृष्णस्य हि सखार्जुनः।
उभयोरन्तरं नास्ति पवनाकाशयोरिव॥"

अथात्मनिवेदनं यथा—(भाः ११-२-४५)

३७। "सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥"

इति ज्ञात्वा आत्मसमर्पणं कुर्वन्ति सन्तः।

३८। आत्मानमर्पयेत् कृष्णे भवेदात्मनिवेदनम्।
अनन्यभावमाश्रित्य तवाहं च वलिर्यथा॥

करने से कोई भी व्यक्ति अवसन्न नहीं होता है। दासीभाव यथा (सम्मोहनतन्त्र में) दासभाव, सख्यभाव एवं पुत्रभाव—विशेषतः नारी भाव महागुह्यतम रूपमें कीर्त्तित हुआहैं। आदिपुराण में कथितहै कि—जो सव भक्त मेराभजन गोपीभावसे करतेहैं—उनसवके प्रति मैं गोपीगणके समान तुष्ट होता हूँ, यह मैं सत्य सत्य ही कहता हूँ। हे पार्थ! मैं सर्वत्र भावानुरूप व्यवहार करता हूँ।

अथ सख्यभाव यथा—श्रीकृष्ण ही परब्रह्म रसमयलीला विग्रह हैं—इनके निकट मैं जो जो वाञ्छा करूँ उस उसको निःसङ्कोच से प्राप्तकर सकता हूँ। इस ज्ञानसे साधुगण सख्यभाव करते हैं। यथा-(भाः १०-२९-१५) गोलोक नित्य यथा कथञ्चित् सम्बन्धसे भी सर्व-चित्ताकर्षक एवं सर्वदोषापहारी श्रीहरिमें काम, क्रोध, भय, स्नेह,

३९। विक्रीता गौः प्रदत्ता वा स्वयं यत्तन्न विद्यते ।
तदा देहादिकं सर्वं दत्तं कृष्णाय नात्मनः ॥

तथा कविरुवाच—(भाः ११-२-३६)

४०। "कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा,
बुद्ध्यात्मना वानुसृत-स्वभावात् ।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै,
नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥"

अथैवं ज्ञानभक्त्या प्रेमलक्षणा भक्तिर्जायते; यथा—ब्रह्म-संहितायाम् (५—५८)

४१। "प्रवृद्धज्ञानभक्तिभ्यामात्मन्यानन्दचिन्मयी ।
उदेत्यनुत्तमा भक्तिर्भगवत्प्रेमलक्षणा ॥"

ऐक्य अथवा सौहार्द्य विधान करते हैं, वेसव निश्चय ही तन्मयता को प्राप्त करते हैं। महाभारत में उक्तहै—अर्जुनके सखा कृष्ण एवं कृष्ण के सखा अर्जुन, वायू एवं आकाशके मध्यमें जिसप्रकार पार्थक्य नहीं है, उसप्रकार कृष्णार्जुनमें भी किसी प्रकार पार्थक्य नहीं हैं। आत्म-निवेदन यथा-(भाः ११-२-४५) जो भागवतोत्तम हैं वे सर्वजीव में स्वोपास्य भगवान् की विद्यमानता को देखतेहैं, एवं परमप्रिय भगवान् में सर्वजीव को अधिष्ठित देखतेहैं। इस ज्ञानसे साधुगण आत्मनिवेदन करते हैं। कृष्णको आत्म समर्पण का नाम ही आत्मनिवेदन; अथवा विक्रीत अथवा प्रदत्तगो की भाँति, "मैं तुम्हारा होगया" कहकर वलिराजाके समान अनन्य भावाश्रयसे ही वह सिद्ध होताहै। इसमें अपना स्वातन्त्र्य नहीं रहता हैं। यह देह दैहिक समस्त चेष्टा कृष्ण चरणमें अर्पित हुई है यह मेरी नहीं है, यह ज्ञान होता हैं। (भाः ११-२-३६) कवि कहते हैं-काय द्वारा अनुष्ठित, मनद्वारा संकल्पित, इन्द्रिय द्वारा आचरित, वुद्धिद्वारा अवधारित एवं अनादिकाल के स्वभाव

तदेवादिपुराणे अर्जुनं प्रति श्रीभगवानुवाच—

४२। "न तपोभिर्न वेदैश्च नाचारैर्न च विद्यया।
वशोऽस्मि केवलं प्रेम्णा प्रमाणं तत्र गोपिकाः॥"

तथात्र प्रेम यथा—ज्ञानाद्यनपेक्षया ममैवेत्याकार—पुरःसरं सहजस्फूर्त्तिः प्रेम। तदेव—(भाः १०-४४-१५)

४३। "या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप,-
प्रेङ्खेङ्खनार्भ—रुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो,
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥"

अथ कीदृक् प्रेम ? तदाह—

वश जो जो किए जा रहेहैं उसको परम पुरुषोत्तम श्रीनारायण को अर्पण करताहूँ।

इसप्रकार ज्ञानभक्तिके साधनसे प्रेमलक्षणा भक्तिका आविर्भाव होता है। ब्रह्मसंहितामें उक्तहै, भगवत्तत्त्व ज्ञान एवं भक्तिद्वारा आत्मा प्रवुद्ध (स्वरूप जागरण) होनेसे उससे आनन्दचिन्मयी भगवत् प्रेमभक्ति का उदय होताहैं। आदिपुराणमें—तपस्या, वेदपाठ, सदाचार, अथवा विद्यासे कोई भी मुझे वशीभूत नहीं कर सकता हैं, मैं केवल प्रेमसे पराजित हूँ। इस वाक्यका प्रमाण गोपी है, गोपी प्रेम किस प्रकार है ? ज्ञानादिके प्रति अपेक्षा न करके 'वह मेरा ही है' इसप्रकार सहजस्फूर्त्ति का नाम ही प्रेमहैं। (भाः १०-४४-१५) गोपीगण गो दोहन समयमें (सकाल अपराह्नमें) उलुखलादि से धान्य संस्कार के समय; दधिमन्थन के समय, उपलेप, (आलिपन अङ्ग-राग) के समय, दोलान्दोलन में रोदनरत वालक को शान्त करने के समय, स्नान एवं गृहमार्जनादि के समय में कृष्ण विषयक् गान ही करती थीं। विविध लीलाविनोदी कृष्णके सुख विषयमें निज निज चित्त अर्पण कर ये सब अश्रुविसर्जन करती हैं, ये अनुरक्त चित्त ब्रज

४४। प्राणप्रतिमरूपेण दर्शनादर्शनेन च।
जीवनं मरणं स्याद्यत्तत् प्रेमेति निगद्यते ॥

पद्मपुराणे—

४५। "अव्यलीकेन मनसा प्रेष्ठस्याराधनं प्रति।
आनन्दानुभवाद्भक्तिर्धियो वृत्तिरचञ्चला ॥

४६। अत्यन्तसुख-संप्राप्तौ विच्छेदे दुःखसन्ततेः।
हेतुरेकोऽयमेवेति संश्रयो भक्तिरुच्यते ॥

४७। द्वाभ्यां संवलितैर्भावैः प्रेमभक्तिरिति स्मृतम् ॥" इति (४)

५। अथैवं श्रीभगवद्भक्तिः केनोपायेन जायते ? तदिति सत्सङ्गादेव। श्रीभगवानुवाच–(भाः ३-२५-२५)

४८। "सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो,
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि,
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥"

गोपीगण ही धन्यहैं। इस प्रेमका स्वरूप-प्राणप्रतिम रूपके दर्शन से अथवा अदर्शनसे जीवन मरण की दशा होती है, उसका नाम ही प्रेम है। पद्मपुराण में कथित है–प्रियतम की आराधना विषय में निष्कपट चित्तमें आनन्दानुभव होते होते बुद्धिवृत्ति निश्चल होतीहैं, इससे (मिलनमें महासुख प्राप्ति, विरहमें महादुःखराशि प्राप्तिमें भी नायक ही यदि एकमात्र कारण एवं समाश्रय होताहै, तब उसकी भक्ति कही जाती हैं। ये दो (प्रेम एवं भक्ति) भावके मिलनसे ही प्रेमभक्ति का उदय होता हैं ॥४॥

अव जिज्ञास्य है कि–यह भगवद्भक्ति कैसे होगी ? उत्तर– सत्सङ्ग से ही। (भाः ३-२५-२५) श्रीकपिलदेव निज जननी को कहे थे–सत्प्रसङ्ग होनेपर मेरी वीर्यप्रकाशक हृत्कर्ण रसायन कथा होती

यथा प्रेमसुधासारण्याम्—

४९। "सततप्रेमपरायण,-जनमुखगलितकृष्णकथामाध्वी।
श्रवणपुटेन निपीता, वितरति कृष्णेऽमलं प्रेम ॥"

तथा पद्मपुराणे—

५०। "न तपांसि न तीर्थानि न शास्त्राणि यजन्ति नः।
संसार-सागरोत्तारे वैष्णव-सेवनं विना ॥"

तदेव—(भाः ११-१२-१,२)

५१। "न रोधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥

५२। व्रतानि यज्ञाश्चन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥"

तथा अतएव भगवद्भक्तिः क्षिप्रमुत्पद्यते यथा-भाः१०-४८-३१

है, वह (हरि कथा) प्रीतिपूर्वक सेवन (श्रवण) करने से शीघ्रही श्री-भगवान्में क्रमशः श्रद्धा, रति एवं भक्ति का आविर्भाव होता है, प्रेमसुधासारणी में उक्तहै-प्रेमिक भक्तके श्रीमुखनिर्गलित कृष्णकथा-मृत निरन्तर श्रुतिचषकद्वारा पानकरते करते जीवके चित्तमें विशुद्धा कृष्णभक्तिका सञ्चार होता है, पद्मपुराण में कथित है-तपश्चर्या, तीर्थपर्यटन, शास्त्रविचार, यज्ञादि, वैष्णवसेवा को छोड़कर संसार सागरसे उद्धार करने में समर्थ नहीं हैं। (भाः ११-१२-२) आसन, प्राणायामादि योग, साख्य, (आत्म अनात्म तत्त्वविवेक) अहिंसादि धर्म, वेदपाठ, तपश्चर्या, सन्न्यास, यज्ञ, एवं कूपारामादि का निर्माण अथवा दान, एकादश्यादि व्रत, देवार्चना, सरहस्य मन्त्र, तीर्थ, नियम एवं यम, येसव मुझको तादृश वशीभूत नहीं कर सकते हैं, सर्वत्र आसक्ति निरासक सत्सङ्ग मुझको जिस प्रकार वशीभूत करता है। अतएव साधुसङ्गसे ही शीघ्र हरिभक्ति आविर्भूत होती हैं, (भाः१०-

५३। "न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥"

तथा नव सिद्धान् प्रति निमिनृप उवाच—(भाः ११-२-३०)

५४। "अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम्॥" (५)

६। अथ सन्तः कीदृशा इत्युच्यताम्; तदेव (भाः५-५-२)

५५। "महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते,-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता,
विमन्यवो सुहृदः साधवो ये॥"

तथा श्रीभगवानुवाच—(भाः ११-११-२९,३३)

५६। "कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥

४८-३१) गङ्गायमुनादि जलमय तीर्थ की सेवासे, मृण्मय, शीलामय विग्रह सेवादि से अनेक कालके बाद मनुष्य पवित्र होता है, किन्तु साधुगण दर्शनमात्रसे ही पवित्र करते हैं। नवयोगीन्द्र के प्रति निमि-महाराज का कथन इस प्रकार ही है, (भा: ११-२-३०) अतएव हे अनघऋषिगण! आपके निकट आत्यन्तिक मङ्गल की कथा जिज्ञासा करता हूँ। इस संसार में क्षणार्द्धकाल के लिए साधुसङ्ग भी मानवगणके लिए परम निधिलाभतुल्य हैं॥५॥

सम्प्रति जिज्ञास्य है कि—साधुगण किसप्रकार हैं? उत्तर—(भा: ५-५-२) महत्सेवा विमुक्ति एवं योषित् सङ्गिसङ्ग नरकका द्वार स्वरूप है वेसव महापुरुषहैं जो समचित्त प्रशान्तहृदय, गतक्रोध, सुहृत् एवं साधुहैं। (११-११-२९-३३) कृपालु, अपने प्रति द्रोहाचरण में भी अकृतद्रोह, सकल जीवके प्रति क्षमावान्, सत्यसार, (स्थिरवल)

५७। कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥
५८। अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जितषड़्गुणः ।
अमानी मानदः कल्यो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥
५९। आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मया दिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स च सत्तमः ॥
६०। ज्ञात्वा ज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः ।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥"

एवं भागवतमाराध्य श्रीकृष्णे भक्तिः प्रजायत इत्यसन्देहः । यथा श्रीभगवन्निगमः–(भाः ११-१२-३)

६१। "सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधानाः खगा मृगाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारण-गुह्यकाः ॥" इत्यादि ।

असूयादि रहित, सुखदुःखस्वमें अविकृत, सर्वप्राणियों के उपकारक, कामना राशिसे अक्षुभितचित्त, वाह्येन्द्रिय निग्रहशील, कोमल व्यवसाय, सदाचार, अपरिग्रह, व्यवहारिक क्रियाशून्य, पवित्र लघु आहारकारी, नियतेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ, मदेकाश्रय एवं मननशील; सावधान, निर्विकार; धैर्य्यशील, जितषड़्गुण (क्षुत्पिपासा, शोक मोह जरामृत्युजयी) अमानी, मानद, परप्रवोधनमें समर्थ, अवञ्चक, कारुणिक, सम्यग्-ज्ञानी, हमसे वेदके द्वारा उपदिष्ट धर्मसमूह को छोड़कर एवं धर्माधर्म के गुणदोष को जानकर जो मेरा भजन करता है, वह सत्तम हैं। देशकालापरिच्छिन्न, सर्वात्मा एवं सच्चिदानन्द स्वरूप मुझको जानकर अथवा न जानकर भी जो जन मेरा भजन अनन्यभावसे करता है, वह भी भक्ततम रूपमें ग्रहणीय हैं। अतएव भागवत (भक्त) की आरा-धना करके भी श्रीकृष्णमें भक्ति प्रादुर्भूत होतीहै–इस विषयमें संशय नहीं हैं।

अतः सन्तमाराध्य श्रीहरौ भक्तिः करणीया अनन्यभावेन;
यथा श्रीभगवद्गीतायामर्जुनं प्रति श्रीभगवानुवाच-(१८-६६)

६२। सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।"

तथा ब्रह्मसंहितायां ब्रह्माणं प्रति श्रीभगवानुवाच-(५-६१)

६३। "धर्मानन्यान् परित्यज्य मामेकं भज विश्वसन् ।
याद्दशी याद्दशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति ताद्दशी ।।"

तथा—(भाः ११-१२-१४)

"तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ।" इति (६)

७। भक्तानां धर्मकर्मादि-बाधेन दूषणमस्ति ? नैवम्, तथा–
(भाः ११–५–४१)

६४। "देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां,
न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं,
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम् ।।"

श्रीभगवान्का निगम (सिद्धान्त) भी वैसाही है-(भाः ११-१२-३) साधुसङ्गसे दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्धचारण, गुह्यक प्रभृति ने श्रीकृष्ण चरणकी प्राप्ति किए हैं। सुतरां साधुसेवा करके हीं अनन्त भावसे श्रीहरि भजन करना होता हैं। गीतामें भी आपने कहाहै–हे अर्ज्जुन ! सर्वधर्म परित्याग कर केवल मेरीशरण ग्रहण करो, मैं ही तुम्हें सर्वपापसे (शोक) परित्राण करूँगा, दुःख न करो। ब्रह्माको श्रीभगवान् ने कहा है–कि अन्यान्य सकल धर्म को परित्याग करके ही एकमात्र मुझका ही विश्वास के साथ भजन करो, जैसीश्रद्धा जिसकी होगी उसकी सिद्धिभी उसी प्रकार होगी। (भाः११-१२) हे उद्धव ! तुम श्रुति स्मृति विहित कर्मादि

तथा वृहन्नारदीये—

६५। "वासुदेव-प्रसङ्गेन क्रियालोपो भवेद्यदि।
तस्य कर्माणि कुर्वन्ति तिस्रः कोट्यो महर्षयः॥"

तथैव—(भाः ११-११-३२)

६६। "आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स तु सत्तमः॥"

तथा—(भाः ४-२९-४७)

६७। "यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥"

इत्येवं श्रीभगवद्भक्तानामनुपपत्तिर्भयादयः सन्ति, नैवम्; यथा श्रीमद्भागवते (१०-१४-५८) "समाश्रिता ये पदपल्लव-प्लवम्" इत्यादि। तथा-(भाः १०-२-३३) "तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्,-भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि वद्धसौहृदाः" इत्यादि। तथा श्रीभगवद्गीतासु—(९–२२)

को परित्याग कर केवल मेरी ही शरण ग्रहण करो। इत्यादि॥६॥

सम्प्रति प्रश्न—भक्तगण धर्मकर्मादि का अनुष्ठान न करने पर प्रत्यवाय होता है? उत्तर—ना, नहीं होता है; (भाः ११–५–४१) जो जन कृत्याकृत्य को छोड़कर प्रयत्न के साथ शरण्य मुकुन्द आश्रय ग्रहण करताहै, वह देवऋषि, भूत, कुटुम्ब, पितृलोक का किङ्कर नहीं होताहै, एवं ऋणी भी नहीं होता है। वृहन्नारदीय में उक्तहै-यदि वासुदेव के प्रसङ्गमें क्रियालोप होताहै, तव उक्तलुप्त क्रिया का सम्पादन के लिए तिन कोटि महर्षिगण नियुक्तहैं। (भाः११-११-३२) मनुकर्त्तृक वेदद्वारा आदिष्ट सकल स्वधर्म को परित्याग करके भी धर्माधर्म के गुणदोष को जानकर जो जन मेरा भजन करताहै वह सत्तम है। (४-२९-४७) हे भगवान्! इस व्यक्तिको संसार से

६८। "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

अतएव श्रीकृष्णचन्द्रपादारविन्दाश्रयणे न किञ्चिद्दुर्लभम् । जन्म-मरण-भयातीतपदञ्च प्राप्यते, नित्यानन्दपदमपि प्राप्यते च; यथा-(भा: १०-३-२७)

६९। "मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्,
लोकान् सर्वान् निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य,
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥"

तथा (श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रे)—

७०। "न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं वाप्युपजायते ॥"

उद्धार कर अङ्गीकार करो, इसप्रकार भक्तद्वारा निवेदित होनेपर भी श्रीभगवान् जब जिसको अनुग्रह करतेहैं तब वह लौकिक एवं वैदिक कर्ममें नैष्ठिक मतिको भी त्याग करता हैं। इसप्रकार भागवत गणकी अनुपपत्ति (अभाव एवं भयादि रह नहीं सकते हैं। जोलोक पुण्यश्लोक मुरारिके पद पल्लवरूप भेलाका आश्रय ग्रहण करता है, उसके लिए दुस्तर भवसागर भी गोष्पद के समान अति तुच्छ हो जाताहै, (भा: १०-२-३३) भवदीय चरणको अनादर कर विमुक्ता-भिमान के कारण पतन होने परभी भक्तिमार्ग से भक्तका पतन कभी भी नहीं होताहै, दैवात् पथभ्रष्ट होने परभी प्रभुके साथ सौहार्द्य के हेतु श्रीप्रभुके संरक्षणमें अवस्थित भक्तगण विघ्नकारिगण के सेना-पतिके मस्तकमें पैर धरकर निर्भयसे विचरण करते हैं। गीतामें भी उक्तहै-अनन्यशरण व्रतीजन मेरी उपासना नित्य करताहैं, उस नित्या-भियुक्त व्यक्तिका योग (अप्राप्य प्रापण) क्षेम (प्राप्त वस्तुका संरक्षण)

तथा-(भाः ११-२-५४)

७१। "भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा,
नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स,
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ?"

इत्यादि श्रीभगवद्भक्तेर्महत्त्वम्। अत्रैवाग्रे श्रीभगवद्भजनो-द्देशरत्नादौ (१) कतिचिदुक्तम्, तत्रैव ज्ञातव्यमिति ॥७॥

का निर्वाह मैं ही करता हूँ। अतएव श्रीकृष्णचन्द्र के चरणाश्रय से किसी भी वस्तु दुर्लभ नहीं होतीहैं, जन्म मरण भयसे अतीत,-पद की प्राप्ति एवं नित्यानन्द की भी प्राप्ति होतीहैं। यथा-(भा: १०-३-२७) हे आद्य (सर्वश्रेष्ठ) मृत्युरूप कालसर्प भयसे व्याकुलित मर्त्यलोक पलायन परायण होकर सर्वत्र गमन करने परभी अभयकी प्राप्ति नहीं होतीहै। जीव की इस दुर्दशा को देखकर कृपालुभक्त उनको भक्ति दान करते है, उससे वह भगवान्‌के पादपद्मरूप धन्वन्तरि को पाकर निर्भयसे अवस्थान करताहै। सर्पभय तो दूर होताही है, मृत्यु भी उसके समीपसे दूरभग जातीहैं। श्रीविष्णु सहस्रनाम में उक्तहै—कस्मिन् कालमें भी वासुदेव भक्तका अशुभ नहीं रहताहै, उनके जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि का भय भी नहीं रहता हैं। (भा: ११-२-५४) चन्द्रोदय होनेपर जैसे सूर्यताप दूरीभूत होताहै, तद्रूप् भगवान् त्रिविक्रम के पदनखरचन्द्र किरणसे उपासक के हृदयताप एकवार विदूरित होने पर पुर्वार उद्भूत नहीं होताहैं।

इत्यादि भक्ति महिमा वर्णित हुई। इस ग्रन्थके प्रथम प्रकाश में भक्ति माहात्म्य वर्णित हैं। अतऐव कामनाके वश होकर नाना-देवोपासना वर्जन करो, प्राणायाम, धर्मकर्म, दान, तीर्थस्थान, नियम, ब्रह्मादि उपासनाको भी परित्याग करो। सबके परमेश्वर, निजपरमानन्दप्रद एवं नित्य अव्यय श्रीकृष्णके चरणकमलद्वयका भजन करो ॥७॥

८। अतः,—

७२। नानादेव-निषेवणं परिहर प्राणादि-संरोधनं
धर्मं कर्म च दान-तीर्थ-नियम-ब्रह्मादिकोपासनम् ।
सर्वेषां परमेश्वरस्य परमानन्दप्रदस्यात्मनः
श्रीकृष्णस्य सदाव्ययस्य चरणद्वन्द्वारविन्दं भज ॥

तथा,—

७३। राधाकृष्ण-पदारविन्द-विगलत्-प्रेमप्रवाहामृतं
पायं पायमनारतं परसुखी भूत्वा महानुन्मदः ।
नान्यत्रापि मनो दधाति न वदत्यन्यं स्मरेन्नेतरं
तस्यैवाङ्घ्रियशो विनाप्यत इमं चक्रे कवी राघवः ॥

७४। स्वर्वापी-सविधे महामुनिवरस्याम्रातकस्याश्रमे
नानाशास्त्रविधिज्ञ-पण्डितयुते स्थानेऽम्बिकाधिष्ठिते ।
ब्रह्म-व्यास-महेश-गोपितधनं कृष्णप्रकाशाभिधं
रत्नं राघव-नामधेयकृतिना वेद्यं कृतं सर्वतः ॥

श्रीराधाकृष्णके चरणपद्म से विगलित प्रेमसुधाधारा निरन्तर पानकर परमसुखी एवं महाउन्मत्त होकर उनके चरण कीर्त्ति व्यतीत जो अन्यत्र मनोनिवेश नहीं करताहै, अन्यकथा नहीं कहता एवं अन्य कुछ का स्मरण भी नहीं करताहै वह कविराघव ने इसग्रन्थ की रचना की हैं। (९)

गङ्गाके सन्निकटमें महामुनिवर व्यास जीके आम्रातक आश्रम में विविधशास्त्र विविधपण्डित मण्डित अम्बिकाधिष्ठित स्थानमें राघव नामक पण्डितद्वारा ब्रह्म व्यास महेश्वरके गुप्तधन कृष्णप्रकाश नामक ग्रन्थरत्न सर्वत्र ज्ञापित हुआ (१०)

जो लोक इसका मर्मज्ञ महाजन एवं उत्तमबुद्धि सम्पन्नहैं वेसव इससे प्रचुर आनन्दलाभ करेंगे। जो लोक इस तत्त्व को नहीं जानते

७५। ये जानन्ति महान्त एव सुधियस्ते मोदयन्त्युत्तमाः
क्षीणा ये न विदन्ति तत्त्वमिदमेवाध्यापयन्त्वाशु ते।
एतद् ये तु विहाय चान्यविषये कुर्वन्त्यहो मानसं
ते किं कृष्णपदारविन्द-सुरसं संप्राप्नुवन्त्यज्ञकाः ?

परम्—

७६। श्रीकृष्णाङ्घ्रि-सरोजयुग्मविगलन्माध्वीकधारामृतं
पीतं यैर्न च चारु चित्तचषकैस्ते वञ्चिता दुःखिताः।
अन्यं वानुसरन्त्यनित्यविभवं सौख्याशया वालिशा
यास्यन्त्युद्भव-मृत्युतीव्र-कदनेष्वाजन्म-कोटिष्वपि ॥

अतः सर्वमन्यं विहाय सर्वोपरि श्रीकृष्णचरणारविन्दं ब्रह्मादिभिर्भजनीयं भजत। तदेव कुरुतैतद्दुर्लभसंग्रहानु-सारेण। तदेवमिमं संग्रहं विरुद्धमतिषु न प्रकाशयेत्।

तदिति—

हैं वेसव दुर्वलहैं, उनसवको पूर्वोक्त महाजनगण ज्ञान प्रदान कर। अहो ! इस भगवद् विषय को छोड़कर जो लोक अन्यं (प्राकृत) विषय की अभिलाष करते हैं, उस महाअज्ञ व्यक्तिगण क्या कृष्णपाद पद्म के सुरस प्राप्त होंगे ? (११)

अपरन्तु–श्रीकृष्णपादपद्म युगल से क्षरित मधुधारामृत को जो लोक सुन्दररूपसे चित्तरूप चषकमें भरकर पान नहीं किए, वे सवही इस रससे वञ्चित एवं दुःखित हैं। अहो ! उस मूर्खगण अनित्य विभव में सुख की आशाकर उसका अनुसरण करते हैं, किन्तु कोटि कोटि जन्मपर्यन्त भी जन्ममृत्युकी तीव्र कदर्थना ही प्राप्तहोतेहैं। (१२)

अतएव अन्य सव वासना त्यागकर ब्रह्मादि देवगण द्वारा भी आराध्य एवं सर्वोपरि श्रीकृष्णचरण कमल की आराधना करो। सम्प्रति इस दुर्लभ संग्रह ग्रन्थके आनुगत्यसे ही श्रीकृष्ण भजन करो।

७७। धूर्त्तायात्यन्तमूर्खाय तथा पण्डितमानिने ।
पाषण्डमतये चैव अन्यदेवोपसेविने ॥

७८। अभक्ताय च लोलाय रिक्तोपासापराय च ।
नास्तिकाय तामसाय तथाहङ्कार-कारिणे ॥

७९। न प्रकाश्यो न देयश्च कदाचिन्नैष संग्रहः ॥

८०। देयो विशुद्धमतये कृष्णपादाब्ज-सेविने ।
गुरुभक्ताय शान्ताय सत्यसन्धाय सर्वदा ॥

यथा श्रीभगवद्गीतासु (१८–६७,६८)

८१। "इदन्ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥

८२। य इमं परमं धर्मं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयम् ॥" इति ।

और एक कथा यहहै कि–इस संग्रह ग्रन्थ का प्रकाश विरुद्धमति लोक के निकट में न करें। धूर्त्त, अतिमूर्ख पण्डितम्मन्य, पाषण्डवुद्धि, अन्यदेवोपासक, अभक्त, लोभी, शून्यवादी (वौद्ध) नास्तिक,अभिमानी लोकों के निकट भी इस ग्रन्थका प्रकाशन न करें। उनसव को कदापि न देवें। किन्तु विशुद्धमति, कृष्णचरणोपासक, गुरुसेवक, शान्त, सत्यसन्ध जनको सर्वदा इस ग्रन्थका दान करें। (१३)

गीतामें कथित है–कि असंयतेन्द्रिय, अभक्त, परिचर्या विमुख एवं सच्चिदानन्दघन भगवान् मूर्त्तिके प्रति विद्वेष परायण व्यक्तिगण की इसका श्रवण न करावें। जो मेरा भक्तहै उनको परमगुह्य इस शास्त्र का श्रवण करावें। श्रवणकारी व्यक्ति भक्ति प्राप्तकर मेरे को प्राप्त करेंगे। इसमें कुछभी संशय नहीं हैं, हे अर्जुन ! ईश्वर सकल जीवके हृदय में वास करते हैं, यन्त्रारूढ़ वस्तुकी भाँति सर्व नियन्ता ईश्वर की इच्छाक्रमसे जीव समूह को जगत् में भ्रमण करना

(गी: १८–६१,६२)

८३। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

८४। तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्
इत्येवं ज्ञात्वा श्रीकृष्णचरणारविन्दमेव शरणं कर्त्तव्यमिति शेषः

इति श्रीकृष्णप्रकाशरत्ने भक्तिविरचनं नाम षष्ठप्रकाशरत्नं समाप्तम् ॥६॥

श्रीकृष्णभजनोपाय-चिन्तामणिरयं ग्रन्थः।
प्रेमभक्तिप्रदो यत्तत् समाश्रयत सत्तमाः॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः॥

पड़ता हैं। तुम सर्वभावसे उनकी शरण लो। उनकी प्रसन्नता से परम शान्ति एवं परमधाम की प्राप्ति होगी, इस तत्व को जानकर श्रीकृष्ण चरणपद्म की शरणापन्न हो जाओ। (१४)

हे सत्तमगण! यह ग्रन्थ श्रीकृष्ण भजनोपायचिन्तामणि एवं प्रेमभक्तिप्रद होनेके कारण इस ग्रन्थका समाश्रय करो ॥८॥

इति षष्ठरत्न ॥६॥

श्रीश्रीगुरुदेवाय समर्पणमस्तु॥

शुभमस्तु शकाब्दः–१६०६ (लिपिकालोऽयम्)

श्रीकृष्णभक्तिरत्नस्य हरिदासेन धीमता
रचिता विमलाभाषा सज्जनानाञ्च तुष्टये॥
ऊर्ज्जमासिसितेपक्षे द्वादश्यां रविवासरे
ऊनविंश शकाब्दे च ग्रन्थोऽयंपूर्णतांगतः॥

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादित ग्रन्थावली

(श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस से प्रकाशित)

क्रम सद्ग्रन्थ	मूल्य
१-वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२-श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३-श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४-श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धति	२०.००
५-श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८-श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
९-ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.१०
१०-श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२-चतु:श्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृतम्	३०.००
१३.प्रेम सम्पुट	४०.००
१४-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५-ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६-श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७-श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८-श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९-श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०-धर्मसंग्रह	५०.००
२१-श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२-श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३-सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४-श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५-रासप्रबन्ध	३०.००
२६-दिनचन्द्रिका	२०.००
२७-श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८-स्वकीयात्वनिरास, परकीयात्वनिरूपणम्	१००.००
२९-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
३०-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	१००.००
३१-श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२-श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३३-श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४-भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५-प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६-वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७-तत्वसन्दर्भ:	१००.००
३८-भगवत्सन्दर्भ:	१५०.००
३९-परमात्मसन्दर्भ:	२००.००
४०-कृष्णसन्दर्भ:	२५०.००
४१-भक्तिसन्दर्भ:	३००.००
४२-प्रीतिसन्दर्भ:	३००.००
४३-दश:श्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४-भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५-श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६-श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७-श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८-श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००
४९-श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०-सत्संगम्	५०.००
५१-नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२-श्रीमद्भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३-श्रीगायत्री व्याख्याविवृति:	१०.००
५४-श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००
५५-श्रीकृष्णजन्मतिथिविधि:	३०.००
५६-५७-५८-श्रीहरिभक्तिविलास:	६००.००
५९-काव्यकौस्तुभ:	१००.००

६०-श्रीचैतन्यचरितामृत २५०.००
६१-अलंकारकौस्तुभ २५०.००
६२-श्रीगौरांगलीलामृतम् ३०.००
६३-शिक्षाष्टकम् १०.००
६४-संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम् ८०.००
६५-प्रयुक्ताख्यात मंजरी २०.००
६६-छन्दो कौस्तुभ ५०.००
६७-हिन्दुधर्मरहस्यम् वा सर्वधर्मसमन्वय: ५०.००
६८-साहित्य कौमुदी १००.००
६९-गोसेवा ४०.००
७०-पवित्र गो ५०.००
७१-गोसेवा (गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध विवेचन) ५०.००
७२-रस विवेचनम् ५०.००
७३-अहिंसा परमो धर्म: ११०.००
७४.भक्ति सर्वस्वम् ५०.००
७५.उत्तमा-भक्ति का लक्षण एवं माहात्म्य (श्रीश्रीभक्तिरसामृतसिन्धु: भगवद्भक्तिभेदनिरूपक: प्रथमालहरी– सामान्यभक्ति:) १५०.००

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१-श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम् १०.००
२-दुर्लभसार १०.००
३-साधकोल्लास ५०.००
४-भक्तिचन्द्रिका ४०.००
५-श्रीराधारससुधानिधि (मूल) २०.००
६-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद) ३०.००
७-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय ३०.००
८-भक्तिसर्वस्व ५०.००
९-मन:शिक्षा ३०.००
१०-पदावली ३०.००
११-साधनामृतचन्द्रिका ४०.००
१२-भक्तिसंगीतलहरी २०.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

१-पद्यावली (Padyavali) २००.००
२-गोसेवा (Goseva) ५०.००
३-पवित्र गो (The Pavitra Go) ८०.००
४. A Review of "Beef in ancient India २००.००
५. Dinachandrika

अन्य भाषाओं में मुद्रित ग्रन्थ

१. Pavitra Go (Spanish)
२- Goseva Pavitra Go (Italian)
३-गोसेवा (गोमांसादि भक्षण विधिनिषेध विवेचन) (तमिल)

॥श्रीहरि:॥